चकमक

नवंबर, 1991 बाल विज्ञान पत्रिका रू. 4.00

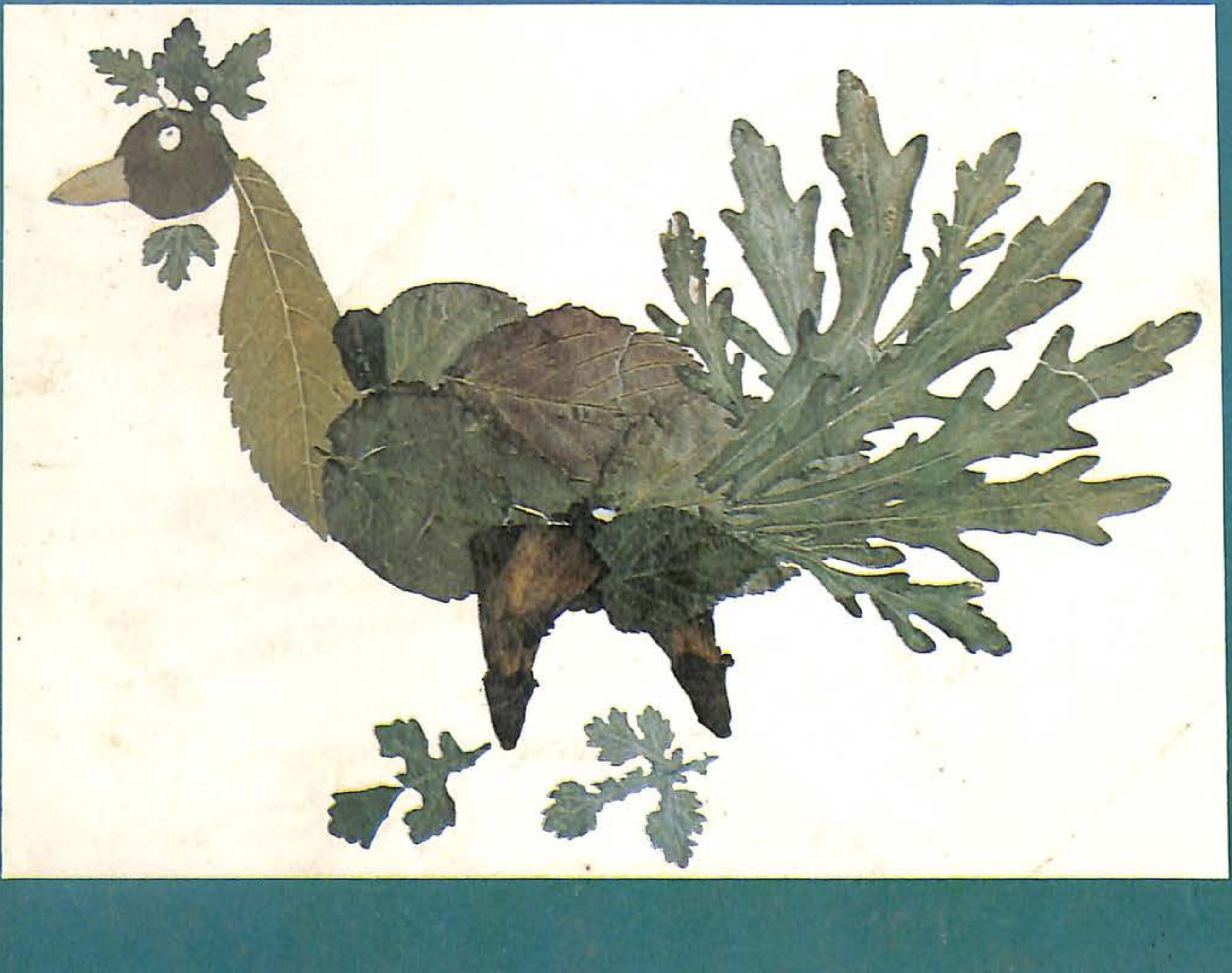

पत्तियों का जादू

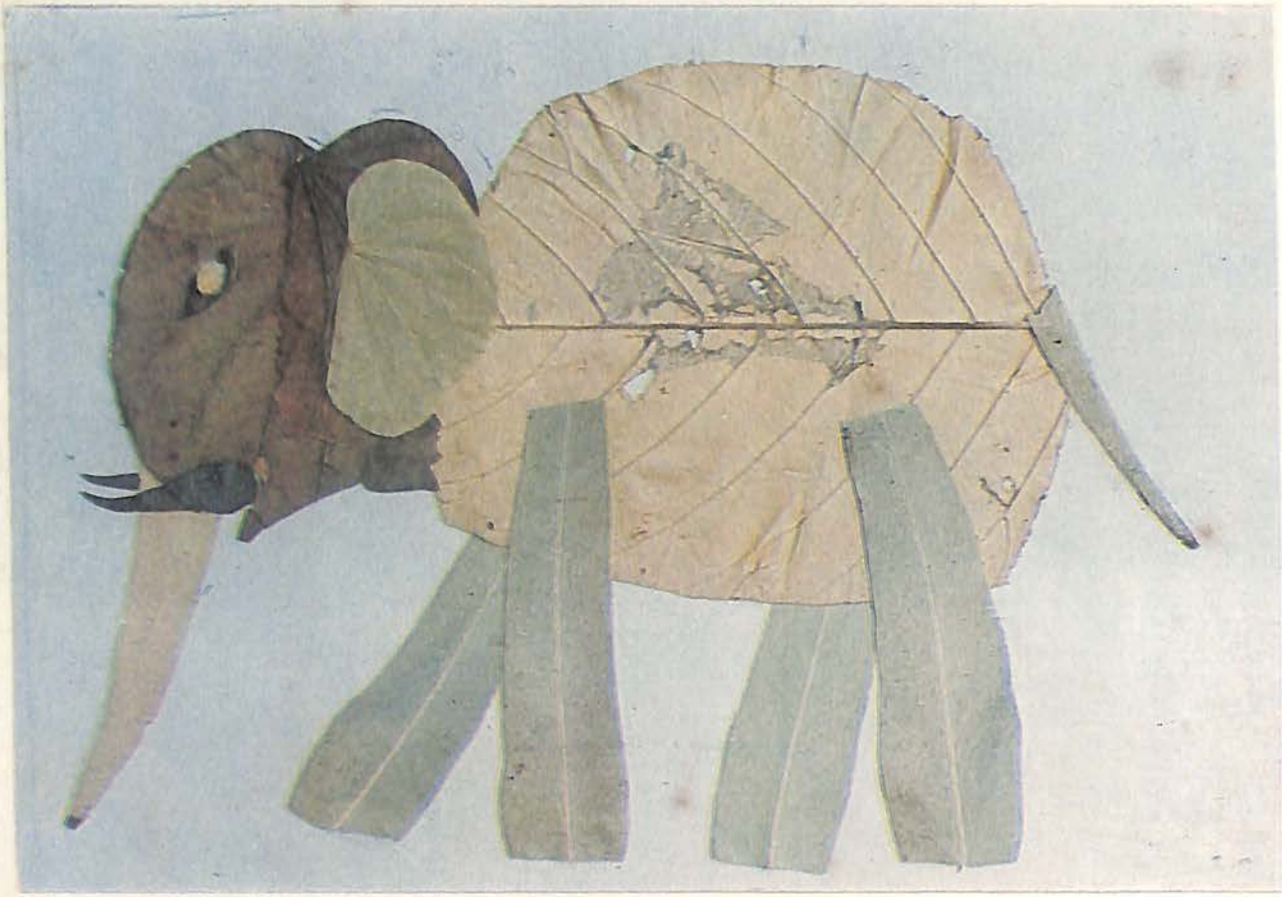

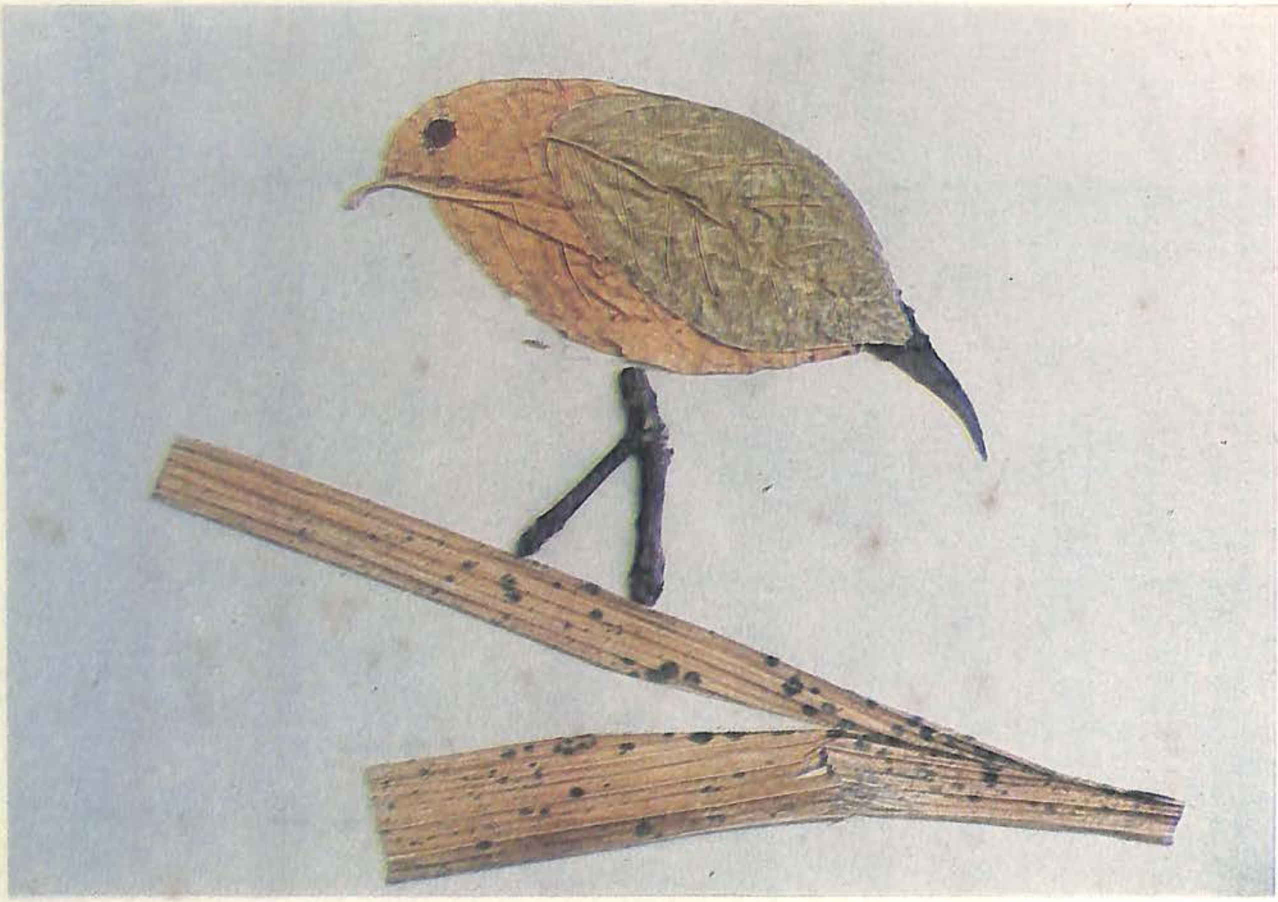

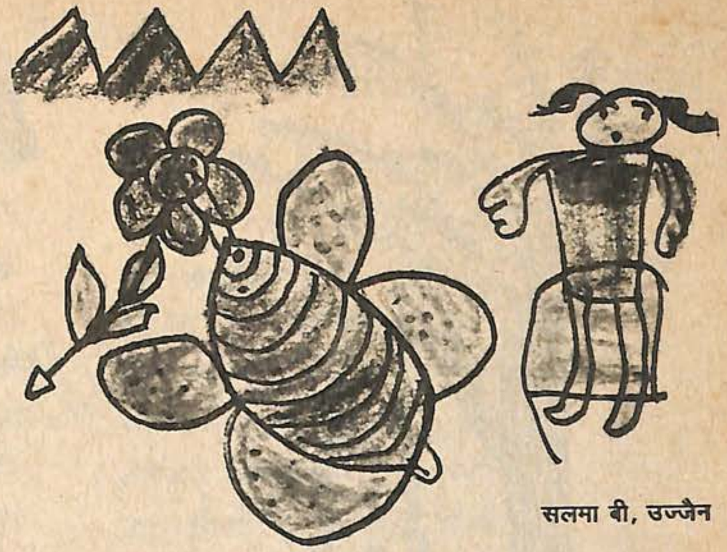

सलमा बी, उज्जैन

चकमक

मासिक बाल विज्ञान पत्रिका

वर्ष-7 अंक-5 नवंबर, 1991

संपादक

विनोद रायना

सह-संपादक

राजेश उत्साही

कविता सुरेश

कला-सज्जा

जया विवेक

उत्पादन/वितरण

हिमांशु बिस्वास, कमलसिंह

चकमक का चंदा

एक प्रति : चार रुपए

छमाही : बीस रुपए

वार्षिक : चालीस रुपए

डाक खर्च मुफ्त

चंदा, मनीऑर्डर या बैंक ड्राफ़्ट से एकलव्य के नाम पर भेजें।

कृपया चेक न भेजें।

पत्र/चंदा/रचना भेजने का पता

एकलव्य,

ई-1/208 अरेरा कॉलोनी,

भोपाल-462016 (म.प्र.)

फ़ोन : 563380

काग़ज़ : 'यूनिसेफ' के सौजन्य से। सहयोग : राष्ट्रीय विज्ञान व प्रौद्योगिकी संचार परिषद (विज्ञान व प्रौद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली)

इस अंक में

विशेष

8 ☐ पत्तियों का जादू

12 ☐ वैद्य, हकीम, डॉक्टर या ओझा बीमार करे किसका भरोसा?

38 ☐ प्रचलित चिकित्सा पद्धतियां

कविताएं

7 ☐ हवा का जादू

20 ☐ घर

कहानी

25 ☐ मेरी गाय

हर बार की तरह

2 ☐ मेरा पन्ना

6 ☐ तुम भी बनाओ

19 ☐ खेल पहेली

31 ☐ खेल काग़ज़ का

32 ☐ माथा पच्ची

34 ☐ दुनिया पक्षियों की-31

36 ☐ क्यों.... क्यों....?

और यह भी

22 ☐ सवालीराम

23 ☐ खेल खेल में

आवरण फोटो : के. आर. शर्मा

एकलव्य एक स्वैच्छिक संस्था है जो शिक्षा, जनविज्ञान एवं अन्य क्षेत्रों में कार्यरत है। चकमक, एकलव्य द्वारा प्रकाशित अव्यवसायिक पत्रिका है। चकमक का उद्देश्य बच्चों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति, कल्पनाशीलता, कौशल और सोच को स्थानीय परिवेश में विकसित करना है।

पूनम तिवारी, सातवीं

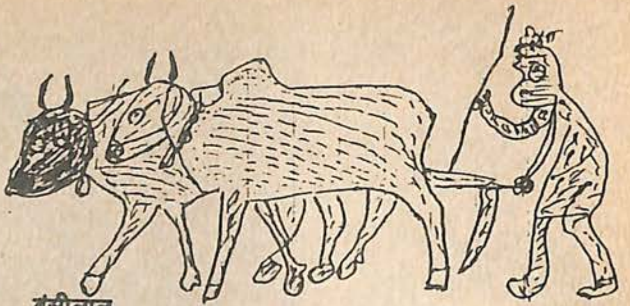

बंसीलाल

दिलीप शर्मा, पिपलिया स्टेशन, मंदसौर

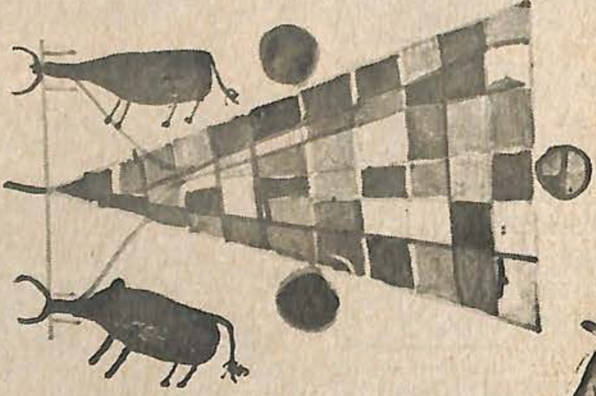

कमलदास बैरागी, आठवीं, दताना, उज्जैन

संजीव तरागंड़ी, आठवीं, उज्जैन

 नेपाल, छठवीं, नरवर, उज्जैन

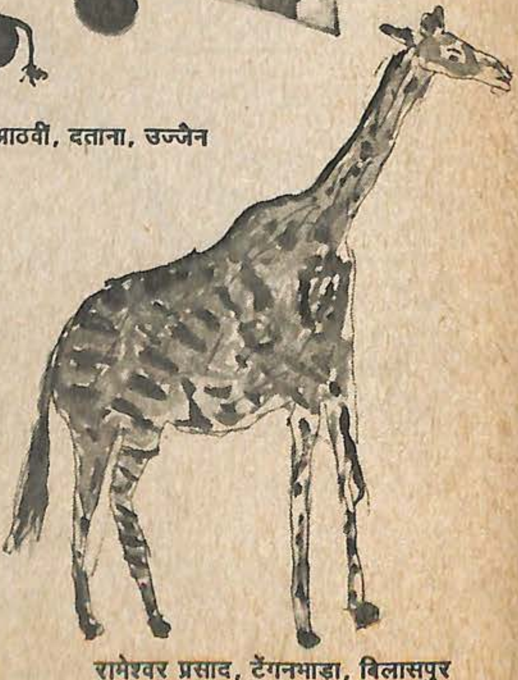

रामेश्वर प्रसाद, टेंगनभाड़ा, बिलासपुर

पड़ी मैं बीमार

पड़ गई मैं बीमार
लेकर गए हस्पताल
फिर आ गई नर्स
लगा दी सुई ज़ोर से!
चढ़ने लगा ग्लूकोज़
बूंद-बूंद कर जाने लगा
जो होना था हो गया
अब तो लेटे रहना बिस्तर पर
काम मेरा बन गया।

फिर अगले दिन सुबह-सवेरे
आ पहुंचा दस्ता डॉक्टरों का
लिख दी ढेरों दवाइयां
खा-खा कर दवाइयां
बढ़ गईं मेरी परेशानियां
और क्या हाल कहूं
लेटे-लेटे अकड़ी मेरी गरदन
बस किसी तरह छुट्टी मिली
आई घर, है शुक्र, भगवान का।

□ **श्रुतिप्रिया, तीसरी, पटियाला**

औरत गुलाम क्यों?

एक दिन की बात है। एक चौपाल पर गांव के लोग इकट्ठे हो रहे थे। मैंने मां से पूछा 'मां ये लोग यहां क्यों इकट्ठे हो रहे हैं?'

मां बोली, 'पंचायत होनी है।'

मैंने कहा, 'किसकी पंचायत?'

कहने लगी, 'तेरे लिए हर बात का जबाव देना पड़ता है। मुझे कुछ नहीं मालूम।'

मैंने प्रेम से कहा, 'बता दो न मां!'

मां बोली, 'श्यामू ने अपनी औरत को बुरी तरह पीटा है इसलिए।'

मैंने कहा, 'क्यों मारा है?'

मां बोली, 'मुझे क्या पता क्यों मारा है। तेरे लिए क्या पड़ी है?'

मां अंदर काम में लग गई। मैंने सोचा कि औरत को इतनी नफ़रत की दृष्टि से क्यों देखा जाता है? क्या औरत स्वतंत्र नहीं जी सकती? औरत उस कोल्हू के बैल की तरह है जिसे जब चाहा लगा दिया कोल्हू चलाने में।

इतने में अचानक मां ने बुला लिया और मेरा ध्यान टूट गया। चौपाल पर पंचायत शुरू हुई। गांव के सरपंच आदि आए, फ़ैसला हुआ। श्यामू को बुलाया गया उससे पूछा, 'क्यों मारा है तूने अपनी बीबी को?'

उसने फटाक से जबाव दिया, 'यह बहुत बढ़ गई है। मैंने इससे कहा जल्दी रोटी बना। खेत पर चली जा। वह दस बजे खेत पर नहीं पहुंची तो मैनेजर साहब नाराज़ हो गए। इसलिए मारा है।'

वह कुछ बोलने ही वाली थी कि उसका मुंह बंद कर दिया और उसकी एक न सुनी। वह रोती बिलखती घर वापस चली गई। कहते हैं कि पंच परमेश्वर होता है। यह मैं नहीं कहती कि नहीं होता है। सिर्फ़ मर्दों के लिए औरत के लिए नहीं। ऐसे समाज में कई औरतें हैं जो भेड़ बकरियों की तरह गुलाम हैं। क्या उनका कोई अधिकार नहीं? आख़िर ग़ुलाम क्यों?

□ **कल्पना दुबे, दसवीं, मड़देवरा, छतरपुर**

एक दिन की बात

एक दिन की बात है, मेरा छोटा भाई काफी इंजीनियर बनता था। एक दिन हमारे यहां लाइट चली गई। उसने मेन स्विच को हाथ लगाकर वायर जैसे ही जोड़ना चाहा, एकदम लाइट आ गई। मैंने उसे धक्का दे दिया वरना उसे करंट लग जाता।

☐ सचिन कुमार पंड्या, नवमीं, देवास

उमेश अग्रवाल, हरदा

पैसे भी चलने लगे!

हमारे विद्यालय में एक लड़का पढ़ता था। उसका नाम कैलाशचंद यादव था। वह बड़ा ही शैतान था। एक दिन उसे कहीं से दो पैसे मिल गए तो वह बहुत खुश हुआ। वह पैसे को लेकर दुकानदार के पास गया और कहा कि इन पैसों की मिठाई दे दो, तो दुकानदार ने कहा कि यह पैसे तो नहीं चलते, तो उसने कहा कि ला मैं चला के बताता हूं, फिर उसने पैसे लेकर पत्थर पर खिसकाकर कहा, ये चल रहे हैं। तो दुकानदार को लाचार होकर मिठाई देनी पड़ी। वह मिठाई लेकर खुश हुआ।

☐ रघुवीर प्रसाद यादव
बड़ियाल खुर्द, जयपुर

दीप्ति चौहान, छठवीं, जावरा

जब मैंने पहली बार चाय बनाई

हमारे यहां मकान बन रहा था और हम लोग दूर रहते थे। मम्मी को सुबह और शाम तरी करने जाना पड़ता था, वो भी कड़कती धूप में। मम्मी थक जाती थीं। मम्मी की थकान कम होती थी चाय से। मम्मी कैसे चाय बनाती थीं, मैं सब देखता था। जब मेरी उम्र नौ के ऊपर-नीचे होगी।

एक दिन मम्मी वापस तरी करने गईं तो मैं चुपके से स्टेंड पर बैठा और गैस जलाया। फिर तपेली रखी। उसमें एक कप पानी डाला और एक कप दूध। और उसमें तीन चम्मच चाय पत्ती और आधा चम्मच शक्कर। जब चाय में तूफ़ान आने लगा तो मैंने गैस बंद कर दिया। फिर चाय कप में छानी और चाय का एक घूंट पिया तो मेरी ज़ुबान जल गई। क्योंकि चाय गरम थी इसलिए कोई स्वाद नहीं आया। फिर मैंने प्लेट में चाय डाली और चखी तो पता चला कि चाय बहुत क[illegible] हो गई।

चाय तो मैंने छोड़ दी पर चाय की पत्ती कहां फैंकूं? तो मेरे को याद आया कि बाहर फैंक सकते हैं। मैं बाहर फैंकने गया तो मम्मी सामने खड़ी थीं। मैं डर गया और रोने लगा। मम्मी ने कहा, "कोई बात नहीं चल रसोई में, मैं चाय बनाती हूं तू ध्यान से देख।"

इस तरह मैंने चाय बनाना सीखा।

□ दीपक मेहता, पांचवीं देवास

तुम भी बनाओ

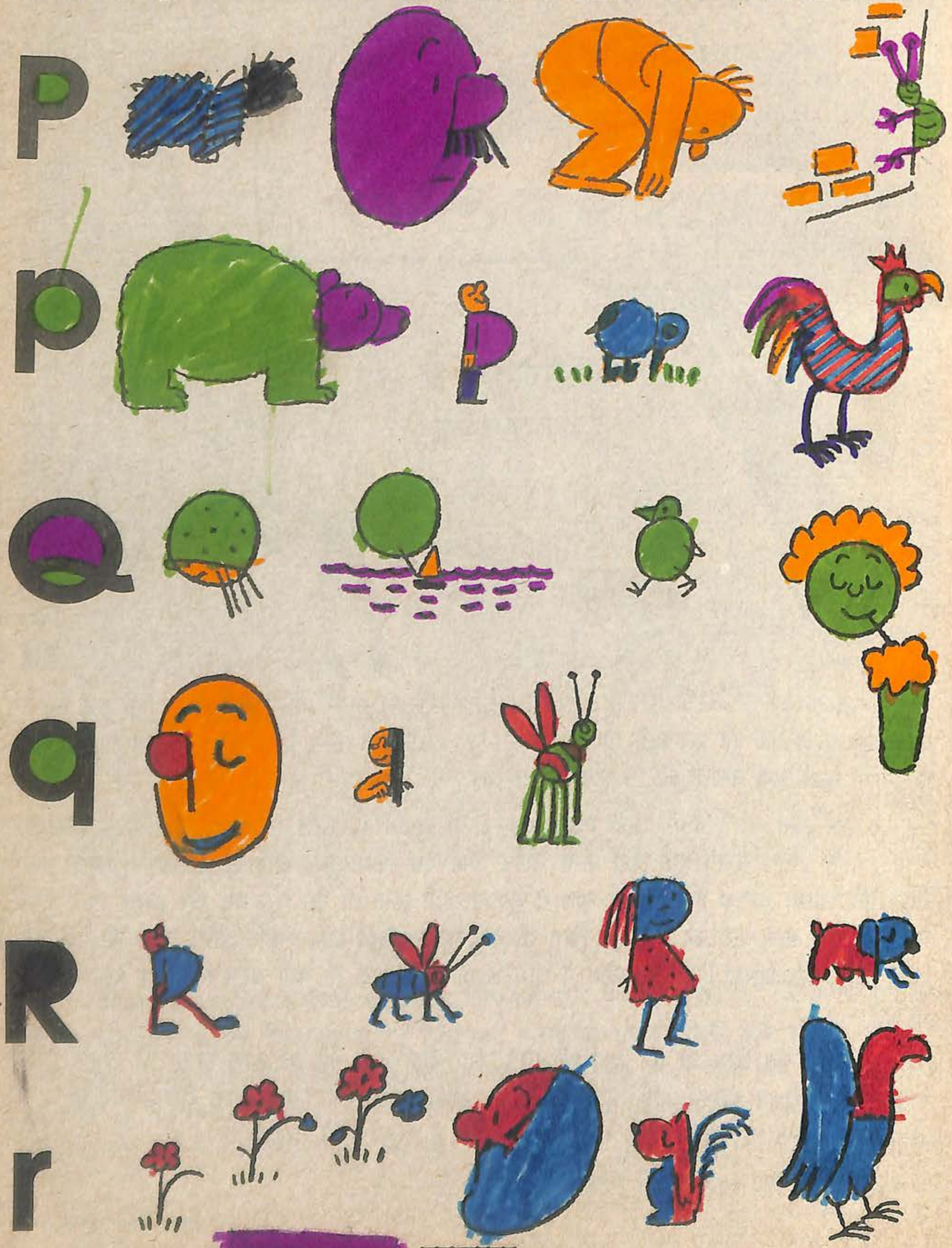

हवा का जादू

एक आदमी आया कहता
अपने को जादूगर
बोला सारे बच्चों से वह
अपने पास बिठाकर

आओ बच्चों, जादू का मैं
एक खेल दिखलाऊं।
भरा लबालब पानी से मैं
एक गिलास तो लाऊं॥

पानी भरा गिलास एक ले
उसे सामने लाया।
उसके मुंह पर कार्ड एक रख
कर* से उसे दबाया॥

धरे कार्ड पर हाथ एक
कर* से गिलास उलटाया।
हाथ कार्ड के नीचे से फिर
उसने तुरत हटाया॥

सभी चकित थे देख-छूटकर
कार्ड नहीं गिर पाया।
सचमुच जादूगर ने तो
बढ़िया जादू दिखलाया॥

पानी भी जैसे का तैसा
रहा भरा ही उसमें
तभी खड़ा हो कहा सुमित ने
जादू ज़रा न इसमें॥

बोला-पानी और कार्ड के
बीच न हवा ज़रा है।
वायु बाहरी के दबाव से
उस पर कार्ड धरा है॥

जादूगर तो गया झेंप
बोला-रहस्य यह सच है।
है विज्ञान यहां भी और न
जादू-वादू कुछ है॥

□ राजनारायण चौधरी
चित्र : चीनू पटेल

(*कर = हाथ)

पत्तियों का जादू !

कवर पर यह शीर्षक पढ़कर कहीं तुम यह तो नहीं सोचने लगे कि ये हमें उल्लू बनाते रहते हैं। क्योंकि पिछले अंक के कवर पर था "पत्तियों पर सांप"। पर सांप-वांप तो कुछ मिला न होगा अंदर। मिलता भी कैसे? आख़िर वह तो एक छोटे से कीड़े की चाल का कमाल ही था न! ख़ैर...... पर इस बार ऐसा नहीं है। इस बार हम तुम्हें सचमुच पत्तियों का जादू बता रहे हैं। पर यह जादू देखने या करने के लिए तुम्हें अपनी कल्पना के घोड़े दौड़ाने होंगे।

पत्तियों के एक जादू के बारे में तो तुम अच्छी तरह जानते हो। वह है उनका पेड़ पर उगना और उसे हरा-भरा कर देना, उसमें एक नया जीवन भर देना। यही पत्तियां पेड़ के लिए भोजन भी बनाती हैं। पेड़ पर सजी पत्तियां जब हवा के झौंकों से हिल उठती हैं तो ऐसा लगता है जैसे कोई संगीत का जादू बिखेर रहा हो।

पत्तियां हमारी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में भी कितने तरह-तरह के रंग भरती हैं। सब्ज़ियों के रूप में उनका उपयोग तो ख़ैर रोज़मर्रा की चीज़ है। पर एक अनोखा प्रयोग है पान का। पान का एक बीड़ा मुंह में घुलते ही अपना जादू दिखाना शुरू कर देता है। मेंहदी की पत्तियां पिसकर भी अपना रंग जमाना नहीं छोड़तीं। पत्तियां कभी हमारा छप्पर, तो कभी बंदनवार बनाती हैं और कभी ख़ुद भोजन के लिए दोना-पत्तल बन जाती हैं। तेंदू के पत्ते से बनी गोल पुंगी और फिर उसमें भरी तंबाख़ू

पत्तियों के जादूगर : प्रेम मनमौजी

यहां इस अंक में पत्तियों से बनी जो भी आकृतियां तुम देख रहे हो, वे प्रेम मनमौजी ने ही बनाई हैं। अब जैसा कि उनका अपना नाम है मनमौजी, वैसे ही मौज ही मौज में उन्होंने पत्तियों का यह जादू बिखेर डाला।

चकमक में दो-तीन साल पहले हमने गुरूजी यानी विष्णु चिंचालकर जी द्वारा बनाई गई ऐसी ही कुछ आकृतियों के बारे में बताया था। गुरूजी पत्तियों के अलावा तमाम कबाड़ी चीज़ों का भी उपयोग करते हैं। प्रेम ने गुरूजी से प्रेरणा लेकर इस कला में नए रंग भरे।

संयोग से प्रेम एकलव्य में ही काम करते हैं। अगर तुम उनसे संपर्क करना चाहो तो पता है :-

प्रेम मनमौजी
द्वारा एकलव्य
293 विवेकानंद नगर
उज्जैन, म.प्र.

की पत्ती से बनी बीड़ी अपना नशे का जादू दिखाती है। अब चाय की पत्ती का जादू तो शायद रोज़ ही देखते होगे। तमाम पेड़ों की पत्तियों का जादू हम तब देखते हैं जब बीमार पड़ते हैं। दवा के रूप में उनका जादुई असर हमारे शरीर पर होता है। ख़ैर.......पत्तियों की ऐसी जादुई करामातों की तो लंबी सूची ही बनती जाएगी।

पर हम यहां इन पत्तियों के एक ऐसे जादू के बारे में बता रहे हैं जिसे देखकर मज़ा आ जाएगा। पत्तियां जब पेड़ से गिर जाती हैं तो ऐसा लगता है जैसे बेकार हो गई हैं। पर इन्हीं पत्तियों से तुम एक नई दुनिया बना सकते हो, मज़ेदार दुनिया। ऊपर से साधारण दिखने वाली इन पत्तियों में दुनिया भर की आकृतियां छिपी हैं, ज़रूरत है बस उन्हें खोजने की। और यह खोज तुम्हें ही करनी होगी। तो आओ शुरू करते हैं!

पहले तो तुम कवर पर बना मोर ही देख डालो। पत्तियों से ही बना है यह। ज़रा बताओ तो कौन-कौन से पेड़ों की पत्तियों का इस्तेमाल किया गया है इसमें? कवर के अंदर वाले पृष्ठ पर मस्त हाथी और ध्यान मग्न चिड़िया किन पत्तियों से बने हैं? और अंदर के पृष्ठों पर भी पेंगुइन, तितली, कछुआ, केंकड़ा, घोड़ा, ऊंट, तोता, शुतुरमुर्ग, मछलियां, ढोलक बजाने वाला, दाढ़ी वाला बाबा और धनुषधारी भी है। इन सबको ध्यान से देखो और फिर कहो कि पत्तियों का जादू है या नहीं?

लगता है अब तो तुम भी पत्तियों के जादूगर बन ही जाओगे। पर हां, अपनी कल्पना के घोड़े सिर्फ़ पत्तियां चराकर मत रोक लेना। और चीज़ों में भी छिपा है ऐसा जादू। उदाहरण के लिए पिछला कवर देख डालो।

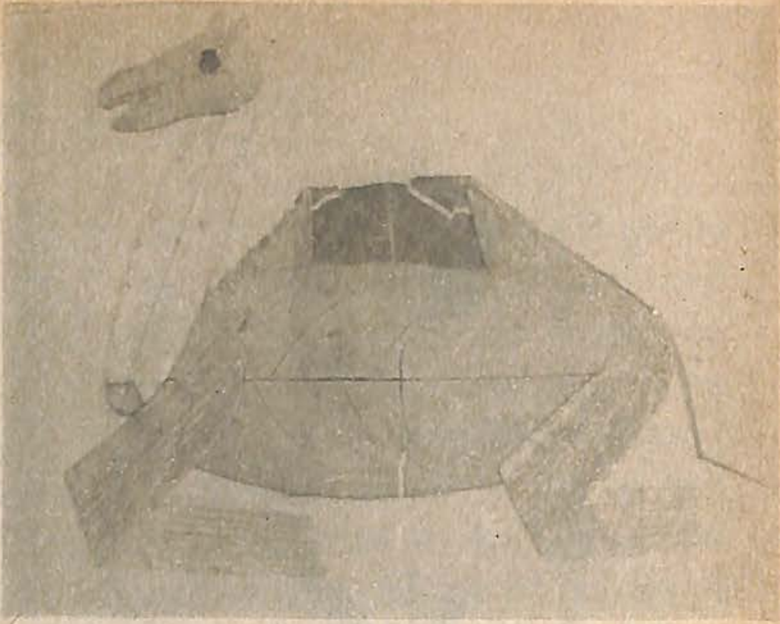

पत्तियों

पेड़ों के कपड़े पत्ते हैं
यही तो उनके लत्ते हैं
पेड़ों के आंगन में
खेल-खिलौने सस्ते हैं

पत्तों का है एक संसार
पत्तों के हैं कई प्रकार
हर पत्ते का अपना आकार
कोई बरगद कोई अनार

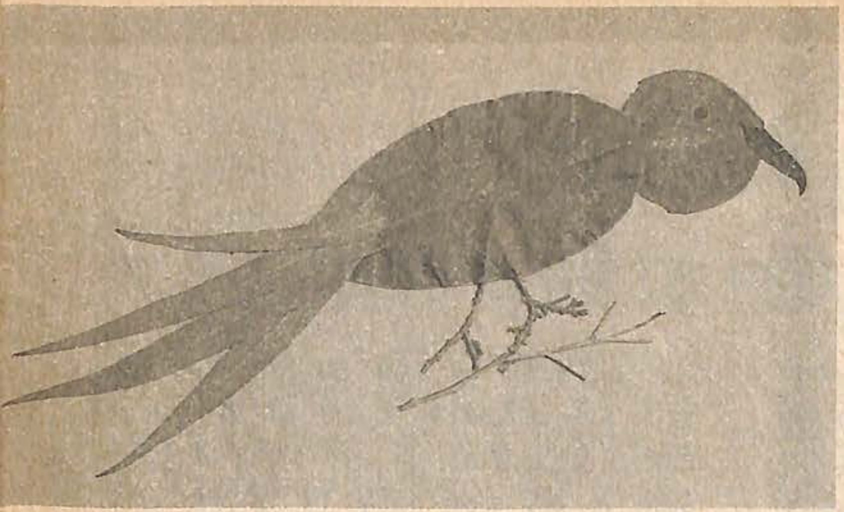

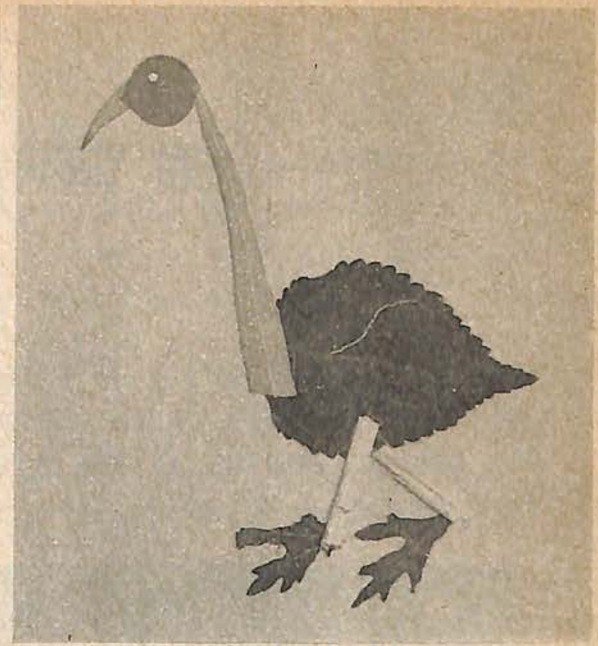

का जादू

पत्तों को छूकर तो देखो
उनसे हाथ मिलाओ
हंसी-खेल और बातचीत में
अपना दोस्त बनाओ

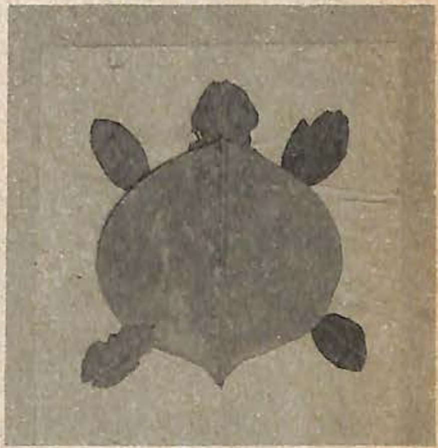

पीपल का पेट, डंडी की पूंछ
हरी घास की लंबी मूंछ
कनेर के पैर, नीम की नाक
कहीं पे बबूल, कहीं पे ढाक

दाढ़ी वाला बाबा बोले
ढोलक कोई बजाए
पानी में मछलियां तैरें
शुतुरमुर्ग दौड़ा जाए

सभी पारदर्शियां : के. आर. शर्मा
कविता : अरविंद गुप्ता, राजेश उत्साही

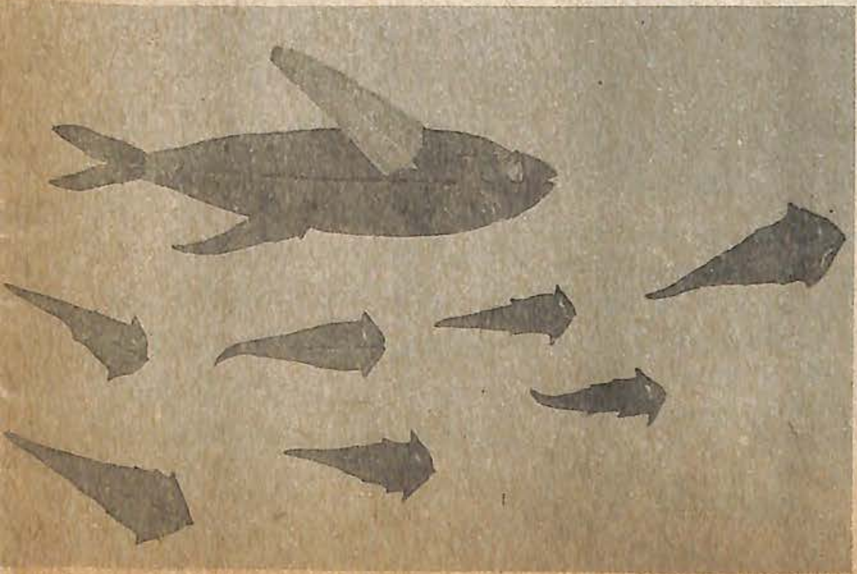

वैद्य, हकीम, डॉक्टर या ओझा
बीमार करे किसका भरोसा?

आठ साल की मनीषा बम्बई के एक अमीर-घराने की जान है। पिछले साल एक रात अचानक उसे तेज़ बुख़ार चढ़ आया। शरीर से पसीना फूटने लगा और बुख़ार में वह अनाप-शनाप बड़बड़ाने लगी। रात के तीन बजे का समय रहा होगा। मां-बाप ने तुरंत अपने पारिवारिक डॉक्टर को फ़ोन किया। देखते ही देखते डॉक्टर आ पहुंचा। मनीषा की हालत देखने के बाद उसने सलाह दी कि उसे तुरंत अस्पताल में भर्ती कर देना चाहिए। साढ़े तीन बजते-बजते मनीषा जसलोक अस्पताल में दाखिल कर दी गई। जसलोक बम्बई ही नहीं बल्कि इस देश का एक प्रमुख अस्पताल है। आधुनिक यंत्रों से जांच-पड़ताल के बाद डॉक्टरों की टीम इस नतीजे पर पहुंची कि मनीषा के दिमाग़ पर तेज़ बुख़ार का असर था। अगर अस्पताल लाने में और देर की जाती तो उसकी हालत बहुत बिगड़ जाती। लगभग एक महीने के इलाज के बाद मनीषा अब काफ़ी ठीक है।

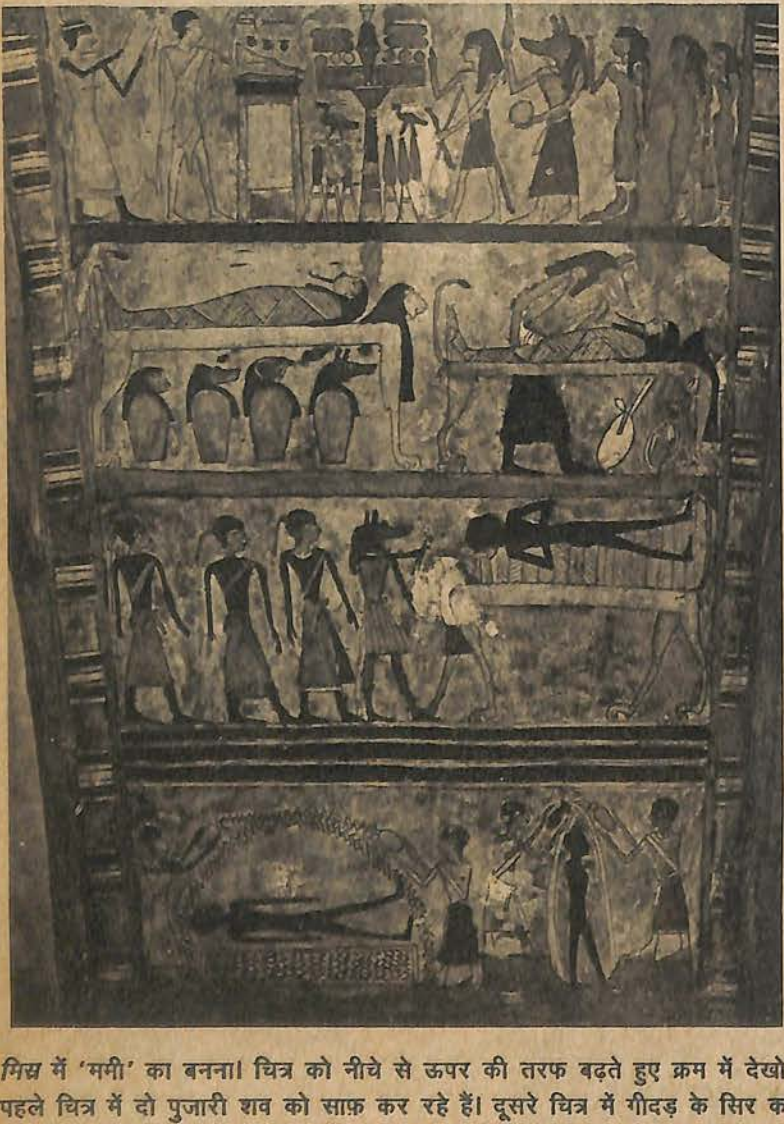

मिस्र में 'ममी' का बनना। चित्र को नीचे से ऊपर की तरफ बढ़ते हुए क्रम में देखो। पहले चित्र में दो पुजारी शव को साफ़ कर रहे हैं। दूसरे चित्र में गीदड़ के सिर का मुखौटा लगाए एक व्यक्ति (जो वास्तव में अन्यूबिस देवता का रूप धारण किए एक ओझा है) शव को चीरने की तैयारी कर रहा है। तीसरे चित्र के दाएं हिस्से में वह शव के अंदरूनी अंगों को निकाल रहा है। बाएं हिस्से में टेबिल के नीचे रखे बरतनों में अंदरूनी अंग भरे हैं। आख़िरी चित्र में जहां ममी रखी है, उस पर भोग चढ़ाया जा रहा है।

उधर मध्यप्रदेश के दूर दराज़ आदिवासी गांव में छह साल का शिवराम भी एक रात अचानक तेज़ बुख़ार से तपने लगा। मां-बाप ने देखकर भी अनदेखा कर दिया। दोनों पास ही बन रही सड़क पर मज़दूरी कर रहे थे। जब बुख़ार तीसरे दिन भी नहीं उतरा तो पास के गांव से ओझा को बुलाया गया। ओझा ने अपनी धूनी रमाई, मंत्र पढ़े और बुख़ार बनाम अलाय-बलाय को झाड़ू का डर दिखाकर निकालने की कोशिश की। फिर अपनी दान-दक्षिणा ली और चलता बना। शिवराम के मां-बाप को ऐसा लगा, जैसे शिवराम की हालत थोड़ी ठीक हुई है। लेकिन दो दिन बाद

उसकी हालत एकाएक बहुत बिगड़ गई। मां-बाप घबराए कि अब तो लड़का गया हाथ से। किसी ने कहा कि यादव डॉक्टर के पास ले जाओ (जो वहां से 25 किलोमीटर दूर था)। किसी ने सलाह दी लक्ष्मण वैद्य के पास जाओ (जो 10 किलोमीटर दूर था)। मां-बाप को कुछ समझ न आया कि क्या करें। फिर किसी ने कहा कि, पहले वैद्य के पास जाओ, आराम नहीं लगे तो डॉक्टर के पास चले जाना। उन्होंने ऐसा ही किया। वैद्य ने अपनी जड़ी-बूटियां दीं और डॉक्टर ने इंजेक्शन और रंग-बिरंगी गोलियां। शिवराम बेचारा ठीक होने की उम्मीद में जड़ी-बूटी और दवाईयां खाता रहा। लेकिन हफ़्ते भर बाद वह चल बसा।

कहने को ये दोनों काल्पनिक कहानियां हैं। लेकिन ऐसी घटनाएं हमारे देश में हज़ारों की संख्या में हर रोज़ घटती रहती हैं। जैसे बीमारी तो हमारे जीवन का एक अनिवार्य अंग है, ख़ासकर हमारे देश के बच्चों का।

पूरी दुनिया सन् 2000 तथा सबके लिए बेहतर स्वास्थ्य जुटाने का सपना देख रही है। सपना देखने वालों में हमारा देश भी है। लेकिन क्या यह संभव है? यह एक बड़ा सवाल है!

अभी हम एक छोटे लेकिन महत्वपूर्ण सवाल पर बात करें कि बीमार होने पर किसकी सलाह लें- वैद्य, ओझा, हकीम या डॉक्टर ?

सबके अपने-अपने तरीक़े हैं इलाज के, और अपनी-अपनी दवाईयां। बीमारियों को ठीक करने के अपने-अपने शर्तिया दावे भी। पर यह कोई आज की बात नहीं है, ज़माने से यही हाल है। तो क्यों न पहले यह समझें कि इलाज का इतिहास क्या कहता है। दुनिया भर में अलग-अलग समय पर क्या तरीक़े अपनाए जाते रहे हैं-बीमारियों को ठीक करने के लिए।

जो तथ्य मिले हैं, उनसे पता चलता है कि इलाज के विभिन्न तरीक़ों का इतिहास कम से कम छह हज़ार साल पुराना है। ख़ासकर मिस्र, चीन, यूनान, बेबिलोन व भारत में।

मिस्रवासियों का विश्वास था कि शव को यदि सुरक्षित रखा जाए, तो आत्मा उसमें पुनः लौट सकती है। इसलिए वे शव से आंत आदि निकालकर उन्हें लवणयुक्त घोल से साफ़ करते थे और फिर शव को विशेष रसायनों से भिगोए हुए सफ़ेद कपड़े में लपेट देते थे। ऐसा शव सड़ता नहीं है, बल्कि सूख जाता है। ऐसे सूखे शवों को ममी कहा जाता है। ममी बनाने में बहुत ख़र्च आता था, इसलिए केवल संपन्न लोगों के शवों को ही सुरक्षित रखा जाता था। ममी बनाने के कारण मिस्रवासी शरीर व अंदरूनी अंगों के बारे में काफ़ी कुछ जानते थे। लगभग पांच हज़ार साल पहले ऑपरेशन भी होते थे। मेसोपोटामिया के एक शासक हम्मूराबी के हुक्म के मुताबिक़-

"अगर किसी उच्च वर्ग के व्यक्ति (यानी संभ्रांत, पुरोहित आदि) का गहरा ज़ख़्म या आंख का फोड़ा कोई डॉक्टर कांसे के औज़ारों की मदद से ठीक करेगा, तो उसे दस शंकिल

शरीर की रचना के बारे में समझाते हुए एक, बड़े डाक्टर, (जो सिंहासन पर बैठे हैं) और उनके साथी। एक साथी छड़ी से शरीर पर कुछ बता रहा है (दाएं)। एक अन्य साथी नाई-शल्य चिकित्सक छुरी से शव को चीर रहा है। यह दृश्य पंद्रहवीं शताब्दी के यूनान का है।

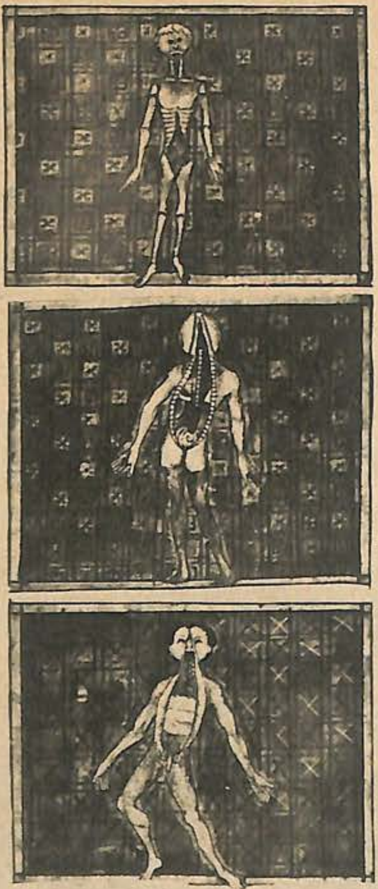

चौदहवीं शताब्दी में गैलन नामक एक यूनानी चिकित्सक द्वारा बताई गई जानकारी पर आधारित, शरीर की आंतरिक रचना का चित्र। जो वास्तविक रचना से मेल नहीं खाता है।

(उस समय, वहां की तौलने की इकाई) चांदी दी जाएगी। अगर मरीज़ एक आम आदमी है तो पांच शंकिल चांदी दी जाएगी।

अगर डॉक्टर के ऑपरेशन के कारण किसी उच्च वर्ग के व्यक्ति की मौत हो जाती है तो डॉक्टर के हाथ काट दिए जाएंगे।''

लेकिन तब पुजारी ही डॉक्टर हुआ करते थे। यह माना जाता था कि इलाज दैवीय कारणों से ही सफल हो सकता है। बिना देवताओं की मर्ज़ी के किसी की बीमारी ठीक नहीं हो सकती।

अलग-अलग बीमारियों के लिए दवाईयों के अजीबो-ग़रीब नुस्ख़े भी थे। जैसे गंजेपन के इलाज के लिए यह सुझाया गया था कि शेर, हिप्पो, मगरमच्छ, सांप, बतख और हिरण की चरबियों का बराबर-बराबर हिस्सा मिलाकर बनाया गया मलहम लगाना चाहिए। या फिर दिमाग़ में पाए जाने वाले द्रव व स्याही से बना मलहम इस्तेमाल करना चाहिए। इनके साथ-साथ अरंडी का तेल, अफ़ीम व कपूर का भी वर्णन मिलता है।

प्राचीन चीन में भी चिकित्सा विकसित थी। लगभग साढ़े चार हज़ार वर्ष पुराने चीनी ग्रंथ 'पेन साऊ' में तक़रीबन एक हज़ार दवाईयों की लिस्ट है, जिनमें से कुछ आज भी वहां प्रचलित हैं।

वहां मान्यता थी कि बीमारी, शरीर में शैतान के घुसने से होती है। शैतानों को निकालने के लिए शरीर में जगह-जगह सुईयां लगाई जाती थीं। इसी तरीक़े को आजकल 'एक्यूपंचर' के नाम से जाना जाता है।

यूनान में चिकित्सा का दौर लगभग दो हज़ार साल पहले शुरू हुआ। हिप्पोक्रेटस ने चिकित्सा की शिक्षा देने के लिए कोसज़जीरे नामक स्थान पर एक संस्था भी खोली। उसकी पद्धति अवलोकन व तर्क पर आधारित थी। बीमारों की जांच करके बीमारी के लक्षण लिखे जाते थे और फिर उनके आधार पर इलाज किया जाता था। लेकिन शरीर के भीतर क्या है और क्या क्रियाएं होती हैं इसके बारे में यूनानी भी बहुत कम जानते थे। प्राचीन भारत के चिकित्सा संबंधी विचारों का यूनानियों पर गहरा प्रभाव था। यह इस बात से पता चलता है कि आयुर्वेद की तरह वे भी यह मानते थे कि पूरा मानव शरीर मिट्टी, हवा, पानी, आग और आकाश से बना है। कफ़, पित्त तथा वात शरीर में

प्राचीन रोम में ऑपरेशन के समय इस्तेमाल किए जाने वाले औज़ार।

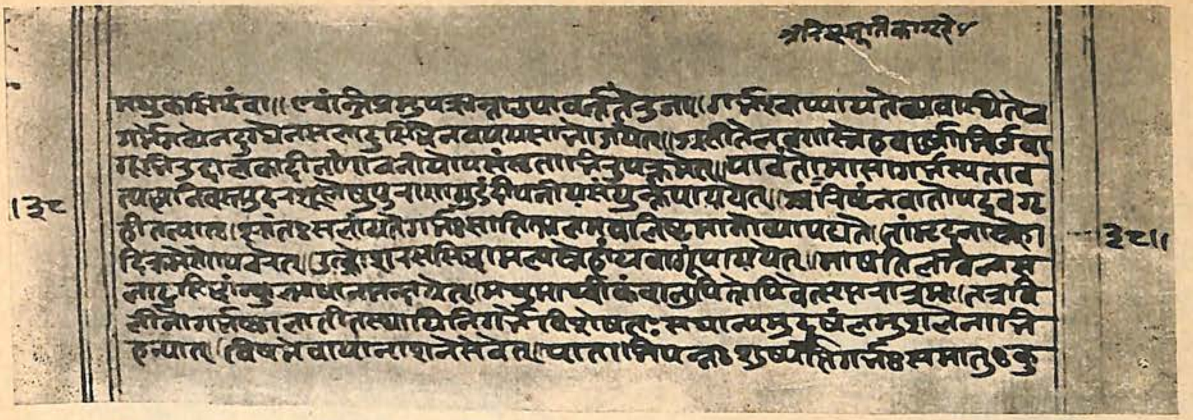

चरक संहिता का एक पन्ना।

पैदा होते हैं। जब इनमें से किसी की कमी या अधिकता हो जाती है तो संतुलन बिगड़ जाता है और शरीर बीमार हो जाता है।

प्राचीन भारत में आयुर्वेद का बोलबाला था। ईसा से आठ सौ साल पहले लिखे गए एक ग्रंथ-आत्रेय संहिता में आयुर्वेद के बारे में विस्तार से बताया गया है। इस ग्रंथ को बाद में चरक ऋषि ने नए सिरे से लिखा। आयुर्वेद के दूसरे ग्रंथ सुश्रुत संहिता में (जिसे पहली ईसवी के आसपास लिखा माना जाता है) विभिन्न जटिल परिस्थितियों में चीर-फाड़ से इलाज का ज़िक्र है। जैसे पथरी, प्रसव के समय रुकावट आने पर या आंख से मोतियाबिंद को ऑपरेशन से निकालना। इसके अलावा बहते खून को रोकने के लिए गर्म धातु का इस्तेमाल, टूटी हड्डी को जोड़ने के लिए बाहरी आधार (जैसे लकड़ी आदि) बांधना सामान्य बात थी। इन ग्रंथों में मलेरिया चेचक, अतिसार, कुष्ठ रोग, टायफाइड, हैजा, प्लेग जैसे रोगों के लक्षणों का वर्णन तो है पर इलाज का नहीं।

तक्षशिला में पाए गए कुछ औज़ार जो ऑपरेशन के काम आते थे।

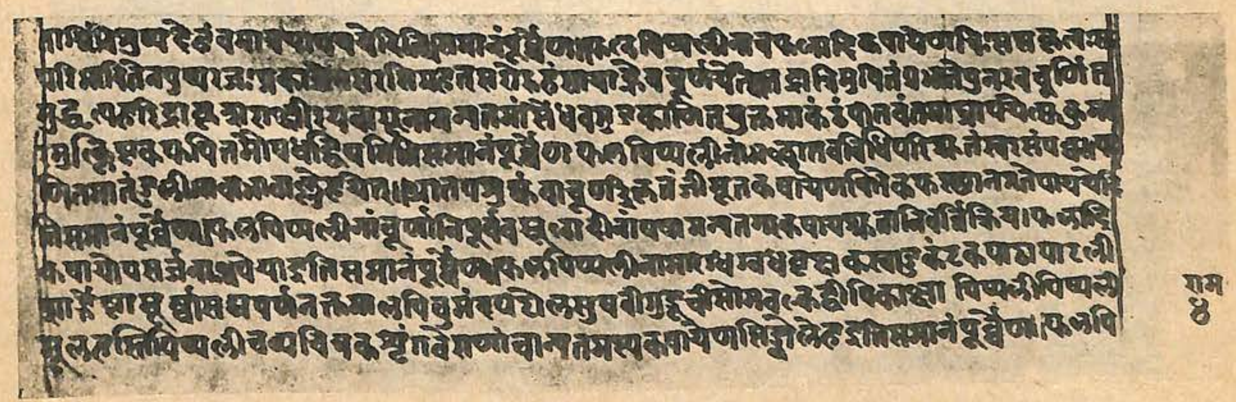

सुश्रुत संहिता का एक पन्ना।

प्राचीन भारत के एक प्रसिद्ध चिकित्सक जीवक, सिर का ऑपरेशन करते हुए।

प्राचीन भारत में आंख के मोतियाबिंद का ऑपरेशन।

चौदहवीं शताब्दी का एक फ़ारसी चिकित्सक कुष्ठ रोगियों के घाव पर गर्म लोहा लगाता हुआ। लेकिन इस विधि से रोगियों को नुकसान ही होता था। हालांकि घाव से बहता हुआ ख़ून इस तरह रोका जा सकता था।

तंत्र-मंत्र, जादू-टोने और भूत-प्रेतों को भगाकर इलाज करने के तमाम तरीक़े भी दुनिया भर में सदियों से प्रचलित रहे हैं। झाड़-फूंक करने वाले ओझा आज भी हमारे बीच मौजूद हैं। इन सबका मानना है कि दैवीय ताक़तों के नाराज़ होने से ही रोग उत्पन्न होते हैं।

लेकिन प्राचीनकाल से अब तक तंदुरुस्ती तथा बीमारी के बारे में जो भी अवधारणाएं प्रचलित रही हैं, या हैं, वे विज्ञान की कसौटी पर खरी नहीं उतरती हैं। जैसे यह कि शरीर में नाभि के नीचे हवा रहती है जो शरीर को संतुलित रखती है। या यह कि शरीर में कफ़, पित्त और वात के संतुलन या असंतुलन से वह स्वस्थ्य या बीमार होता है।

वास्तव में आज शरीर तथा उसकी चिकित्सा का हमारा जो आधुनिक ज्ञान है, वह विज्ञान की बदौलत ही है। और यह भी तब संभव हुआ जब शरीर के अंदरूनी अंगों की जानकारी हासिल हुई। शरीर की आंतरिक रचना के बारे में कैसे पता चला, इस संबंध में कई क़िस्से हैं। पर सबसे मज़ेदार क़िस्सा अंद्रेख वैसालियस का है जो 1514 से 1564 के बीच इटली में रहा। उस समय तक शरीर को चीरने-फाड़ने की अनुमति न तो सरकार ही देती थी और न ही धर्म। वैसालियस फांसी की सज़ा भुगते क़ैदियों के शव चुराकर, उनकी चीर-फाड़ करता था। इस तरह उसने शरीर की आंतरिक रचना के बारे में जो कुछ जाना, उसे एक किताब के रूप में 1543 में प्रकाशित किया। इसमें शरीर रचना के सुंदर चित्र भी थे। इसी प्रकार 1628 में विलियम हार्वे ने शरीर में रक्त के परिसंचरण व हृदय के काम को समझा। आहिस्ता-आहिस्ता मानव शरीर के अंगों की रचना व उनके कार्यों के बारे में हमारी जानकारी बढ़ती गई।

बीमारी के कारणों तक पहुंचने का रास्ता लुई पाश्चर के प्रयोगों ने दिखाया (देखो चकमक, नवंबर, 89 का अंक)। पाश्चर ने पहली बार यह सिद्ध किया कि बहुत सारी बीमारियां रोगाणुओं के कारण होती हैं। पाश्चर की इस खोज ने आधुनिक चिकित्सा विज्ञान को एक नई दिशा दी। बाद में पेनिसिलीन तथा एंटीबायोटिक दवाओं की ख़ोज ने आधुनिक चिकित्सा पद्धति को कहीं अधिक विश्वसनीय बना दिया। जानलेवा बीमारियों जैसे तपेदिक, टायफाइड, चेचक, मलेरिया, निमोनिया, हैजा, आदि के इलाज के लिए आधुनिक चिकित्सा पद्धति ने ही दवाएं खोजीं। आजकल आमतौर पर अस्पताल और डॉक्टर आधुनिक चिकित्सा (एलोपैथी) पद्धति का ही उपयोग करते हैं। अंग्रेज़ी दवाईयां इसी का हिस्सा हैं।

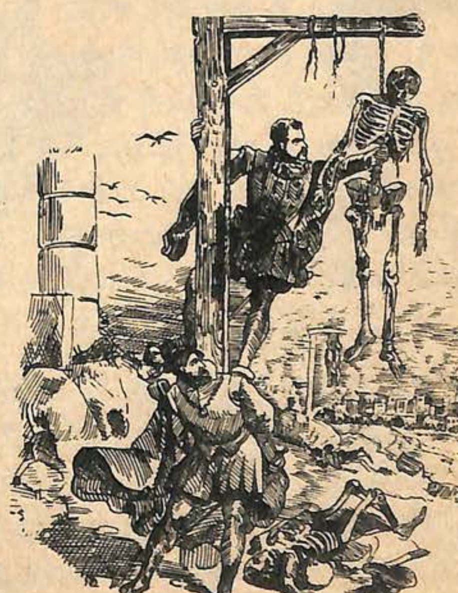

फांसी की सज़ा भुगते कैदियों के शव चुराता वैसालियस।

यह तो रही इतिहास की एक झलक। अब हम लेख की शुरुआत में उठाए गए सवाल पर वापस लौटते हैं-कि बीमार पड़ने पर किसके पास जाएं?

सबसे बढ़िया जवाब तो शायद यही होता कि हम बीमार ही न पड़ें। पर यह तो संभव नहीं लगता। इतिहास की झलक से तो लगता है कि आज एलोपैथी ही वैज्ञानिक एवं कारगर चिकित्सा पद्धति है। हमें उसी की शरण में जाना चाहिए। पर क्या वह सबके लिए उपलब्ध है? असलियत यह है कि उसकी सुविधाएं और प्रसार शहरों, ख़ासकर, बड़े शहरों तक ही सीमित है। दूर-दराज़ के गांवों में तो बस उसका नाम ही सुना जाता है या बहुत हुआ तो टेलीविज़न पर उसके कारनामे देखे जा सकते हैं। अमीरी और ग़रीबी की खाई ने इसे आम आदमी की पहुंच से और दूर कर दिया है। शहरों में भी वह धनवानों की सेवा करती है। आम आदमी तो उसका फ़ायदा उठा ही नहीं पाता और जो उठाते भी हैं वे अपनी पसीने की कमाई गंवाकर। एलोपैथी चिकित्सा की फ़ीस सुनकर ऐसा लगता है जैसे हम डॉक्टर नहीं डाकुओं के पास इलाज कराने गए हों।

दूसरी तरफ एलोपैथी आधुनिक पद्धति ज़रूर है और इस बात में भी संदेह नहीं कि जानलेवा बीमारियों में उसी पर भरोसा किया जा सकता है। लेकिन सच्चाई यह भी है कि अंग्रेज़ी दवाईयां जहां बीमारी ठीक करती हैं वहीं शरीर में अपने कुछ हानिकारक प्रभाव भी छोड़ देती हैं। जैसे एंटीबायोटिक दवाईयां कुछ रोगों के लिए अचूक हैं। लेकिन यह इस पर भी निर्भर करता है कि उनका कैसे उपयोग किया जा रहा है। सावधानी न बरतने पर वे शरीर में गंभीर क्षति पहुंचा सकती हैं।

यह भी सही है कि विज्ञान की कसौटी पर आधुनिक चिकित्सा पद्धति ही सबसे विश्वसनीय है। लेकिन लोगों के अपने सामाजिक विश्वास भी बीमारी को ठीक करने या न करने में मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालते हैं। मंहगी फ़ीस लेकर भी अगर डॉक्टर इंजेक्शन न लगाए या रंग-बिरंगे केप्सूल न दे तो, इलाज कराने वाले को लगता है, उसे ठीक से देखा

अफ्रीका की ब्लेक फुट जाति का ओझा। ओझा झाड़-फूंक के अलावा, छोटे-मोटे ऑपरेशन तथा कुछ जड़ी-बूटियों का उपयोग भी करते हैं। कई लोग ओझाओं के झाड़-फूंक से फ़ायदा महसूस करते हैं।

नहीं गया।

मुद्दे की बात यह है कि कोई बीमार नहीं पड़ना चाहता या नहीं रहना चाहता। अब स्वस्थ्य होने के लिए जो उससे बन पड़ता है वह करता है। कोई यह नहीं सोचता कि जिस पद्धति से वह अपना इलाज कर रहा है, वह वैज्ञानिक है या नहीं! और शायद जो मुट्ठी भर लोग इन बातों को समझते हैं वे औरों को समझाने का प्रयास न के बराबर करते हैं। इसीलिए जिसके पास पैसा है, वह जसलोक अस्पताल से लेकर ऊंचे पहाड़ों पर बैठे किसी देवी-देवता के दरबार में भी मत्था टेक आता है। शेष अपने 'भाग्य' पर रोकर अपने को नीम-हकीमों के हाथों सौंप देते हैं। चाहे फिर उनका हाल शिवराम जैसा ही क्यों न हो।

तुम कौन हो? मनीषा या शिवराम? उचित वैज्ञानिक चिकित्सा सुविधाएं हर व्यक्ति, हर गांव तक पहुंचें यह कैसे संभव है? इसे पाने के लिए क्या करना होगा? सवाल तुमसे है!

□ विनोद रायना

चित्र : टाइम/लाइफ तथा इंडियन सिस्टम ऑफ़ मेडीसिन से साभार

खेल पहेली

टेनग्राम के इन सात टुकड़ों को जोड़कर यहां दी गई विभिन्न आकृतियां बनी हैं। तुम भी बना देखो। (हल अगले अंक में)

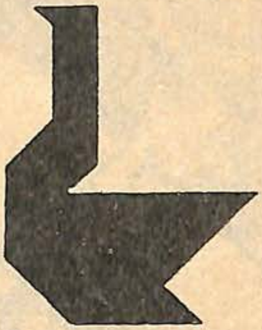

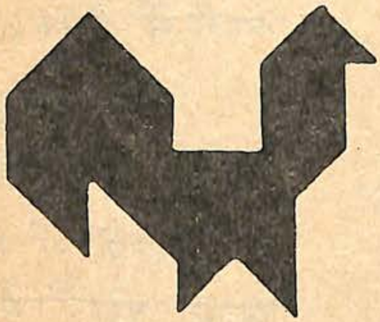

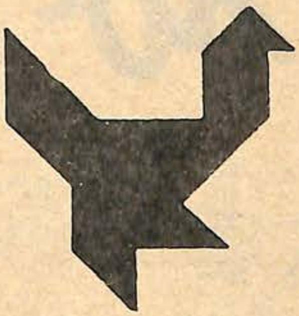

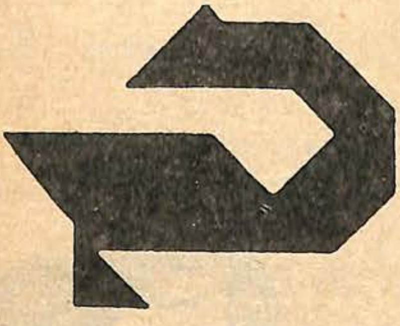

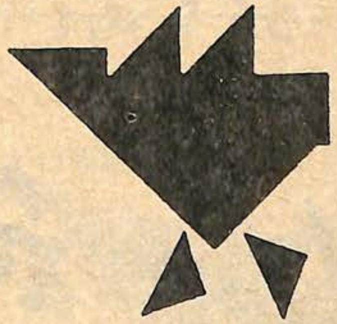

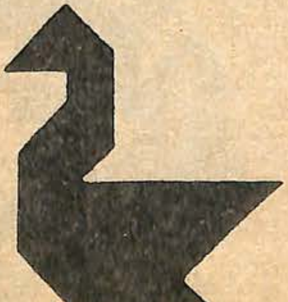

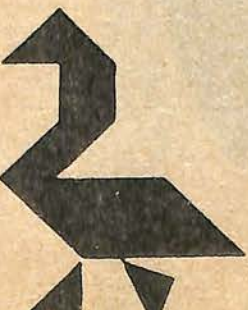

हल अक्टूबर, 91 अंक के

घर

सबके अलग अलग रहने को
बने हुए हैं अपने घर

पक्षी पेड़ों पर रहते हैं
मगरमच्छ जल के अंदर

चूहे सांप बिलों में रहते
बांबी में दीमक, चींटी

तरु कोटर
छत्ते में

शेर गुफाओं में रहते हैं
हिरन सुरंगों में छिपकर

चमगाद
उल्लू ब

घर

में रहे गिलहरी
छिद्र मधुमक्खी

ड़ खोहों में रहते
ा घर है खंडहर

बया घोंसले में रहती है
बंदर नहीं बनाते घर

सबसे अच्छा अपना घर है
महल, दुमहला या छप्पर!

▫ निरंकारदेव सेवक

चित्र: प्रणब चक्रवर्ती, पुलक विश्वास, मिकी पटेल, नीरेन सेन गुप्त
(चित्र एन. बी. टी. के सौजन्य से)

सवालीराम

■ *आंख में आंसू कहां से आते हैं?*

□ सरिता, विमलेश, सोहागपुर

■ *प्याज को काटते हैं तब अपनी आंखों में आंसू क्यों आते हैं?*

□ सामंतसिंह सक्तावत, बालागुड़ा, मंदसौर। मुकेश, हाटपिपल्या, देवास

□ वास्तव में हमारी आंखों से हमेशा ही आंसू निकलते रहते हैं, लेकिन इतने धीरे-धीरे कि हमें पता ही नहीं चलता। जानते हो, दिन भर में हमारी आंखों में अंदर ही अंदर लगभग 10 मि.लीटर आंसू बह जाते हैं।

हमारी आंख के बाहरी कोने में ऊपर की ओर आंसू बनाने वाली ग्रंथियां होती हैं। इनसे निकले आंसू नलियों द्वारा ऊपरी पलक के नीचे पहुंचकर वहां जमा होते हैं। जब हम पलक झपकाते हैं तो ये आंसू पूरी आंख में फैल जाते हैं। आंसू हमारे दृश्य-पटल (कोर्निया, जिससे हम देखते हैं) को गीला और साफ़ रखते हैं। बाद में ये आंख में ऊपरी और निचली पलक के जोड़ के पास बनी एक नली से होते हुए नाक में बह जाते हैं (चित्र देखो)।

आमतौर पर हमारी आंखों की निचली पलक का सिरा चिकना होता है इसलिए आंसू बहकर आंख से बाहर नहीं निकलते। यह तो हुई सामान्य अवस्था की बात। पर जब किसी कारणवश ग्रंथियों पर दबाव बढ़ जाता है तो ये आंसू जल्दी-जल्दी निकलते हैं और बाहर बहने लगते हैं।

हमारी आंखों पर या आंसू बनाने वाली ग्रंथियों पर पड़ने वाला दबाव दो तरह का होता है। एक वह जिसके संकेत आंखों से मस्तिष्क तक जाते हैं। जैसे आंखों में तेज़ हवा या रोशनी लगने; कचरा पड़ने या फिर सर्दी लगने, खांसने, उबासी लेने या हंसने से पड़ने वाला दबाव। इस तरह दबाव के पड़ने पर निकलने वाले आंसू आंखों को चोट या ऐसी ही कोई प्रतिकूल परिस्थिति से बचाने का एक स्वाभाविक उपाय है।

प्याज़ काटने के दौरान निकलने वाले आंसू भी इसी श्रेणी में आते हैं। प्याज़ में एक ऐसा तरल पदार्थ होता है जिसमें गंधक की मात्रा बहुत अधिक होती है। यह तरल पदार्थ हवा के संपर्क में आते ही गैस में बदल जाता है। जब गैस के रूप में यह हमारी आंखों तक पहुंचता है तो आंखों में जलन होने लगती है। इस जलन को कम करने के लिए ही आंसू बनाने वाली ग्रंथियां आंसू बहाने लगती हैं। इससे प्याज़ की गैस की सांद्रता कम हो जाती है और आंखों को राहत मिलती है।

आंसू बनाने वाली ग्रंथियों पर पड़ने वाले दूसरे तरह के दबाव के संकेत मस्तिष्क से आते हैं। ऐसे संकेत मुख्यतः मानसिक कष्ट, अत्यधिक खुशी आदि होने पर आते हैं।

आंसू हमारे दृश्य-पटल को गीला और साफ़ रखने के साथ-साथ और भी कई काम आते हैं। ये हमारे दृश्य-पटल और ऊपरी पलक के बीच के घर्षण को कम करके दृश्य-पटल को चोट से बचाते हैं। दृश्य-पटल पर फैलकर यह उसकी सतह को भी एक-सा बनाते हैं। इस तरह की एक-सी सपाट सतह अच्छी दृष्टि के लिए ज़रूरी होती है। जब हम आंखें बंद करते हैं तो यह पलकों के जोड़ को मज़बूती से बंद रखने में भी मदद करते हैं। ये दृश्य-पटल को ऑक्सीजन और दूसरे पोषक तत्व भी पहुंचाते हैं।

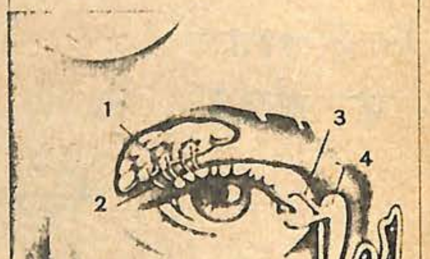

1. आंसू ग्रंथियां, 2. आंसू नलिका, 3. आंसू निकास नली, 4. आंसू इकट्ठे करने वाली थैली, 5. नाक में आने वाले आंसुओं के लिए नली

बधाई कार्ड बनाओ

नववर्ष, दीपावली, ईद, क्रिसमस या ऐसे ही अन्य अवसरों पर, जन्मदिन पर तमाम लोग एक दूसरे को बधाई कार्ड भेजते हैं। पर आजकल बधाई कार्ड भेजना भी एक महंगा शौक़ है। हरेक के बस की बात नहीं कि वह बाज़ार से कार्ड ख़रीदकर भेज सके। ऐसे में अगर हम तुम्हें सस्ते और सुंदर बधाई कार्ड बनाने के कुछ सुझाव दें तो कैसा रहे?

अब कुछ तरीक़े तो तुम ख़ुद भी जानते होगे। अपने घर के आसपास के पेड़-पौधों से छोटी-छोटी फूल-पत्तियां इकट्ठी करो। इन्हें किसी मोटी किताब में अलग-अलग जगह पर पन्नों के बीच दबाकर रख दो। एक दो दिन बाद जब वे लगभग सूख जाएं तो उन्हें मनचाहे काग़ज़ या कार्ड पर चिपका दो। चिपकाने के लिए सादा पोस्टकार्ड भी ले सकते हो। स्केच पेन से अपना संदेश या तुम जो लिखना चाहो, लिख दो।

सचमुच के फूल-पत्तियों से न बनाना चाहो या चिपकाने में दिक़्क़त आती हो तो काग़ज़ से मनचाही आकृति काटकर अपने कार्ड पर चिपका सकते हो। काग़ज़ अगर रंग-बिरंगे हों तो और अच्छा लगेगा।

अगर यह भी पसंद न आए तो एक और 'आइडिया' देते हैं। पेंसिल और उसको छीलने वाले मुर्गे यानी शार्पनर से तो तुम्हारी दोस्ती कभी न कभी रही होगी। पेंसिल छीलने का भी अपना एक तरीक़ा होता है। अगर सावधानी से और धीरे-धीरे पेंसिल छीलोगे तो पेंसिल की जो छीलन तुम्हें मिलेगी वह गोले में जुड़ी हुई फूलदार आकृति की होगी। बस इस छीलन को अपने कार्ड पर चिपका लो। उसके आजू-बाजू स्केच पेन से कुछ अपनी कलाकारी कर लो। बधाई कार्ड तैयार!

जैसा कि हमने पहले ही कहा कि हम यहां कुछ सुझाव दे रहे हैं। अब तुम्हारे पास अपने और भी तरीक़े हैं, तो हम इंतजार करेंगे, उनके चकमक तक पहुंचने का!

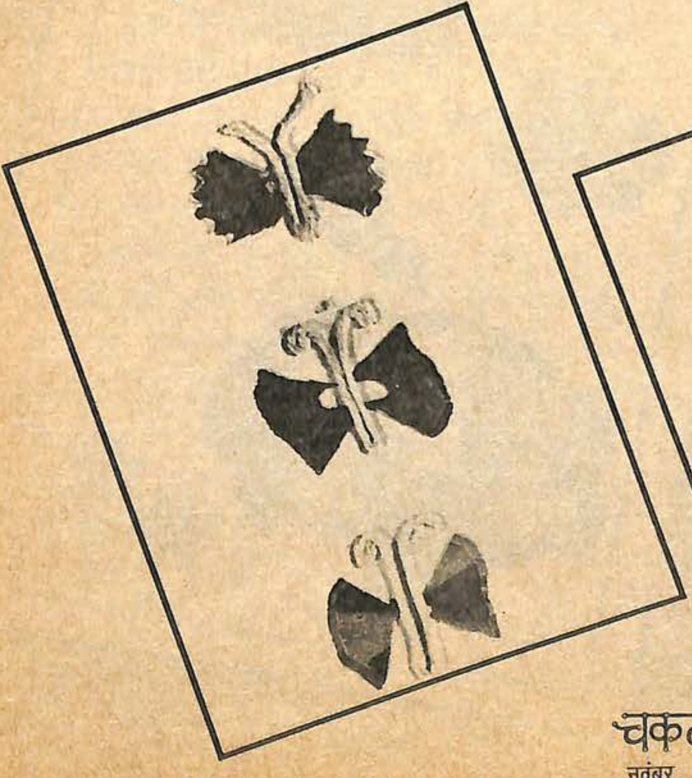

कहानी

मेरी गाय

एक दिन मैंने सोचा, क्यों न एक गाय पाल लूं। ग्वाले के इस दूध से तो अब मन ऊब चुका है। बार-बार पानी मिला दूध आता है। कहने पर तपाक से जवाब मिलता है, "आपको न पुसाता हो तो लेना बंद कर दीजिए।" अपनी गाय आ जाए, तो रोज़ दूध मिलने लगे। कभी समय-असमय भी दूध की ज़रूरत खड़ी हो जाए तो अपनी गाय का दूध दुह लेने में देर कितनी? गाय हमारे घर की और आंगन की शोभा भी तो है।

गाय के गोठे की सफ़ाई का काम भी मुश्किल नहीं होता। गाय के बछड़े और बछड़ियां होंगी, तो घर के बच्चे उनके साथ खेलेंगे। नन्हें-नन्हें बछड़ों और बछड़ियों के साथ खेलने में छोटे बच्चों को बड़ा मज़ा आता है।

बात मेरे मन में बस गई। मैंने बच्चों की मां की सलाह ली। उन्होंने मेरी हां-में-हां मिलाते हुए कहा, "इधर गाय का दूध बहुत ही पतला और फीका आने लगा है। अपनी गाय आ जाएगी तो हमको घर का दूध मिलने लगेगा और गाय के गोबर से उपले भी थापे जा सकेंगे। अपने घर में घी-दूध की इतनी खपत भी नहीं है कि सारा दूध ख़र्च हो जाए। बचे हुए दूध का दही जमा कर उसकी छाछ बिलो लेंगे, तो हम अपने पास-पड़ोस के लोगों को घर की छाछ दे सकेंगे। ताज़े मक्खन का बढ़िया दानेदार घी तैयार हो सकेगा। बस, गाय को दुहने का ही एक सवाल सामने रहेगा। लेकिन यह काम भी मैं......"

बात काटते हुए मैंने कहा, "नहीं, दुहने का काम तो मैं ही करूंगा। बचपन में मैंने बकरी का दूध दुहा है, इसलिए गाय का दूध दुहना मैं जल्दी ही सीख जाऊंगा। गाय की सारी सेवा-चाकरी भी मैं ही किया करूंगा। तुम्हारे पास घर के काम की कौन कमी है?"

बच्चों की मां की मंज़ूरी मिल गई और गाय ख़रीद लेने की बात तय हो गई।

उस दिन से मैंने एक सुंदर, अच्छे डील-डौल वाली दुधारू और प्रेमल स्वभाव की गाय खोजनी शुरू की। मैंने अपने गांव के ग्वालों की सारी बस्ती छान डाली, पर एक भी गाय जंची नहीं। किसी का रंग अच्छा नहीं लगा, तो किसी के सींग पंसद नहीं पड़े। किसी की पूंछ टेढ़ी थी तो किसी के कान छोटे थे। कोई दूध देने वाली थी, लेकिन प्रेमल स्वभाव बिल्कुल नहीं था, कोई ख़ासी ताज़ी और तगड़ी थी, लेकिन दूध तो एक-दो सेर से ज़्यादा देती नहीं थी।

मैं सुबह मुंह अंधेरे ही जाग जाता और झटपट अपने नित्य कर्म से निपट कर गाय की खोज में निकल पड़ता। आज इस गांव जाता, तो कल उस गांव पहुंचता। रोज़-रोज़ एक-एक गांव का चक्कर लगाता, लेकिन शाम को निराश होकर लौटता। मनचाही गाय कहीं मिल नहीं रही थी। शाम को घर पहुंच कर बच्चों की मां को सारी जानकारी

देता। वे बेचारी बड़े ध्यान से मेरी बातें सुनतीं और अंत में कहतीं, "अच्छी गाय के लिए आपको इतनी मेहनत तो करनी ही होगी।"

गाय की खोज में कई दिन बीत गए। रोज़ का काम धंधा पिछड़ने लगा। मुहूर्त पूछने के लिए आने वाले लोग लौट कर जाने लगे। सत्यनारायण की कथा बांचने के बुलावे आते, लेकिन शाम पड़ते-पड़ते मैं इतना थक जाता था कि कहीं जाना अच्छा नहीं लगता था। मैं मना कर दिया करता था।

किंतु खोजने पर भी मनपसंद गाय मिल नहीं रही थी, इसके लिए क्या किया जाए?

मैं बराबर सोचता रहता था कि कब गाय आए और कब मैं उसकी पीठ सहलाऊं? कब पी.....हो, पी... हो की आवाज़ के साथ उसको पानी पिलाऊं, और कब आ.....ओ. आ.... ओ की आवाज़ करके गाय को अपने पास बुलाऊं?

गाय के आने से पहले मैंने उसके लिए घुंघरू बनवा लिए। उसके सींग रंगने के लिए सिंदूर ख़रीद लिया। उसके लिए घास-चारे का सौदा भी कर लिया।

बच्चों की मां का हौसला भी बहुत बुलंद था उन्होंने गली-मुहल्ले में सब जगह कह रखा था कि घर में गाय के आ जाने पर वे खुशी-खुशी छाछ लेने आएं। गांव के कुम्हार भाई दोहनी बेचने आए तो उन्होंने उनसे कुछ दोहनियां भी ख़रीद कर रख लीं।

यों देखते-देखते कई दिन बीत गए। एक दिन गाय की बात सोचते-सोचते मुझ को नींद लग गई और नींद में मैंने एक सपना देखा।

सपने में बरगद का एक बहुत बड़ा पेड़ दिखाई पड़ा। पेड़ की छाया में गायों का एक झुंड बैठा था। ग्वाला पेड़ पर बैठा अपनी बांसुरी बजा रहा था। गायें छाया में बैठकर जुगाली कर रही थीं, और ऊंघ भी रही थीं। कुछ नन्हें बछड़े-बछड़ी इधर-उधर दौड़ भाग रहे थे और उनके गलों में बंधी घंटियों की आवाज़ हवा में गूंज रही थी।

सब गायों के बीच में हथिनी-सी एक गाय बैठी थी। बढ़िया सुंदर, सफ़ेद रंग था। बड़े ख़ूबसूरत, गोल और सुडौल सींग थे। आंख, कान और मुंह की

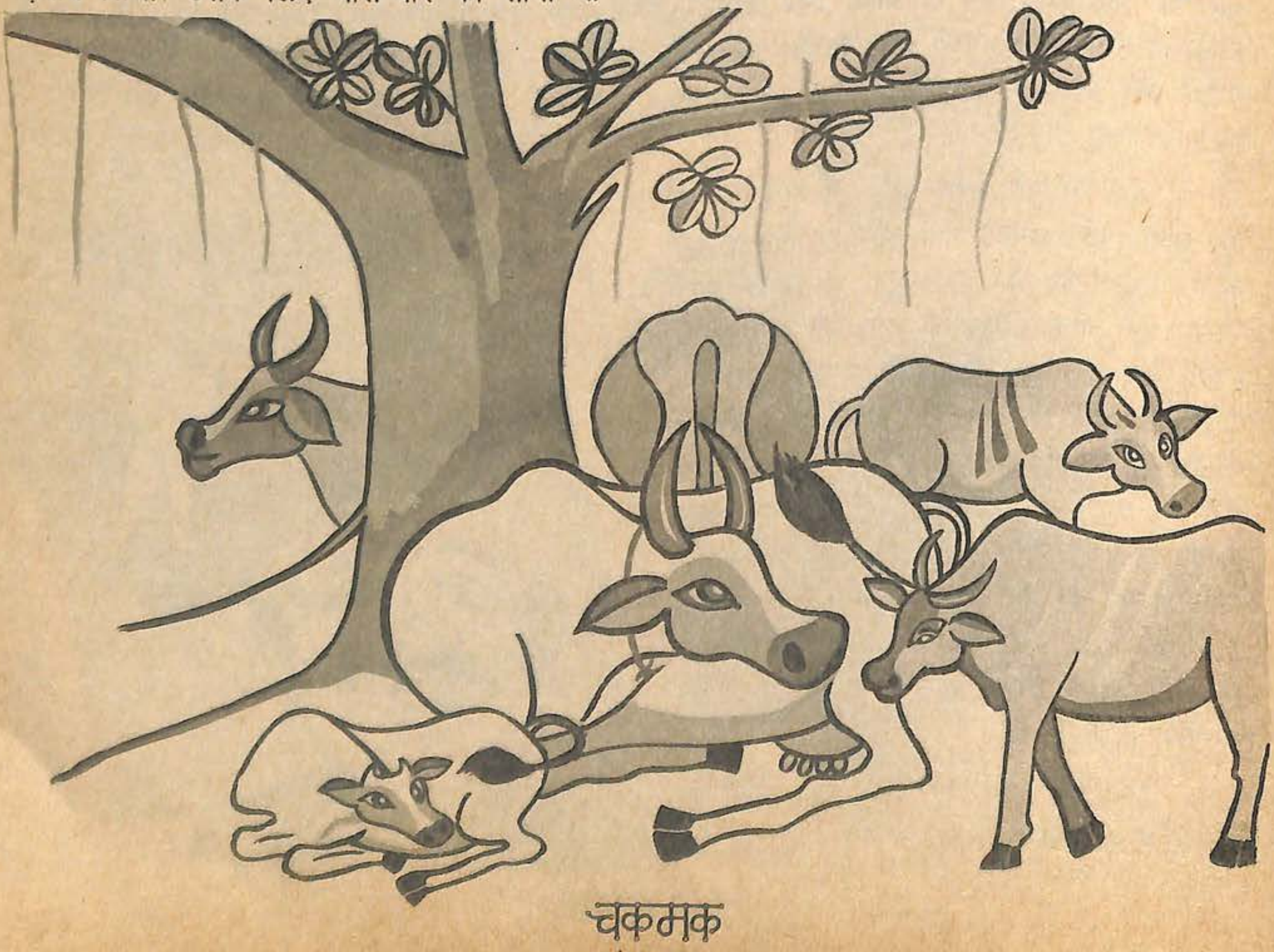

गिजु भाई
जन्म : 15-11-1885
निधन : 23-6-1939

**गिजु भाई,
जिन्हें 'मूंछों वाली मां' के नाम से
भी जाना जाता है, बच्चों से प्रेम करने
वाले एक अद्‌भुत व्यक्ति थे।
गिजु भाई बच्चों के लिए लिखते भी थे।
उन्होंने कहानी, नाटक, कविता, गीत, पहेलियां, चुटकुले
सभी कुछ लिखा।
लगभग दो साल पहले चकमक में उनकी कई रचनाएं
प्रकाशित हुई थीं।
'मेरी गाय' भी उनकी एक रोचक कहानी है।
कहानी लंबी है। यहां हम उसका एक हिस्सा
राज्य संदर्भ केंद्र (प्रौढ़ शिक्षा), जयपुर के
सौजन्य से प्रकाशित कर रहे हैं।**

छवि मोहक थी। पीठ चौड़ी और गठीली थी। पूंछ लंबी और सिरे पर गुच्छेदार थी। गाय को देखकर मेरा मन खुशी से नाच उठा।

मैंने मन-ही-मन कहा, "बस, मुझको ऐसी ही गाय की ज़रूरत थी। मुझको तो यही गाय चाहिए। ऐसी ही एक गाय खोजने में लगा था।"

मैं तो उस गाय को एकटक देखता ही रहा। मैंने मन-ही-मन सोचा, "बहुत अच्छा हुआ। जैसी गाय की तलाश थी, आख़िर वैसी ही गाय मिल गई। इसको देखकर तो बच्चों की मां भी खुश हो जाएंगी। चलूं, ग्वाले से पूछ लूं कि इस गाय के कितने रुपए देने होंगे?"

इससे पहले की ग्वाला मेरे सवाल का जवाब देता, घर में चूहों ने डिब्बा गिरा दिया और मेरी नींद खुल गई।

सपना तो ख़तम हो गया लेकिन बरगद का वह पेड़, वह ग्वाला, गायों का वह झुंड और उस झुंड के बीच बैठी वह गाय, ये सब तो मेरी आंखों के सामने से हटते ही नहीं थे।

बच्चों की मां को जगा कर मैंने सारा क़िस्सा सुनाया, तो सुनकर उनको भी बड़ी खुशी हुई।

मेरे मन में एक ही लौ लगी रही कि कब सवेरा हो, और कब मैं सपने में देखी हुई गाय को खोजने के लिए निकलूं। ऐसी हालत में भला मुझको नींद कैसे आती? आंखों के सामने वह गाय, वह ग्वाला और बरगद का वह पेड़ तो खड़ा ही था। चार बजते ही मैं उठा। झटपट दातौन किया। थोड़ा नाश्ता कर लिया। हाथ में लाठी ले ली और कमर में रुपयों से भरी लंबी थैली बांध कर मैं चल पड़ा।

चलते समय मैंने बच्चों की मां से कहा, "सुनो, घर लौटने में मुझको दो-चार दिन भी लग जाएं, तो तुम नाहक परेशान मत होना। इस बार मैं अकेला नहीं लौटूंगा।"

मैं गाय की खोज में गांव-गांव घूमने लगा। एक ही दिन में मैं तीन गांवों की सीमा में घूम लिया। मेरे पैरों में ज़ोर था, और मन में निश्चय था कि गाय तो वैसी ही ख़रीदनी है, जैसी सपने में देखी थी। पहले दिन की शाम हुई, और दिन ख़ाली गया। इसी तरह दूसरा दिन भी ख़ाली बीता। तीसरे दिन भी कोई पता नहीं चला। मैं मन-ही-मन सोचने लगा, "भले आदमी, सपने तो आख़िर सपने ही होते हैं। सपने में जो जैसा दिखता है, ठीक वैसा ही होता कब है?"

लेकिन बात मेरे गले उतर नहीं रही थी। लगता था कि अंदर से कोई कह रहा है कि तुम को गाय तो वैसी ही मिलेगी, जैसी तू चाह रहा है।

चौथे दिन की दोपहरी तपने लगी। सूर्य-नारायण सिर पर आ गए। पेट में चूहे कूदने लगे। मुंह सूखने लगा। लेकिन मैं तो चलता ही चला गया।

रास्ते-भर गाय के ही नाम का जप जपता रहा।

तभी सामने थोड़ी दूरी पर घनी हरियाली दिखाई पड़ी। आंखों पर हाथ रखकर देखा तो बड़े जटादार बरगद का एक पेड़ दिखाई दिया। पेड़ की छाया में गायों का एक झुंड बैठा था। सिर से पैर तक मेरा सारा शरीर रोमांचित हो उठा। मन खुशी से भर गया। लगा कि शायद यहां अपनी मनपसंद गाय मिल जाए।

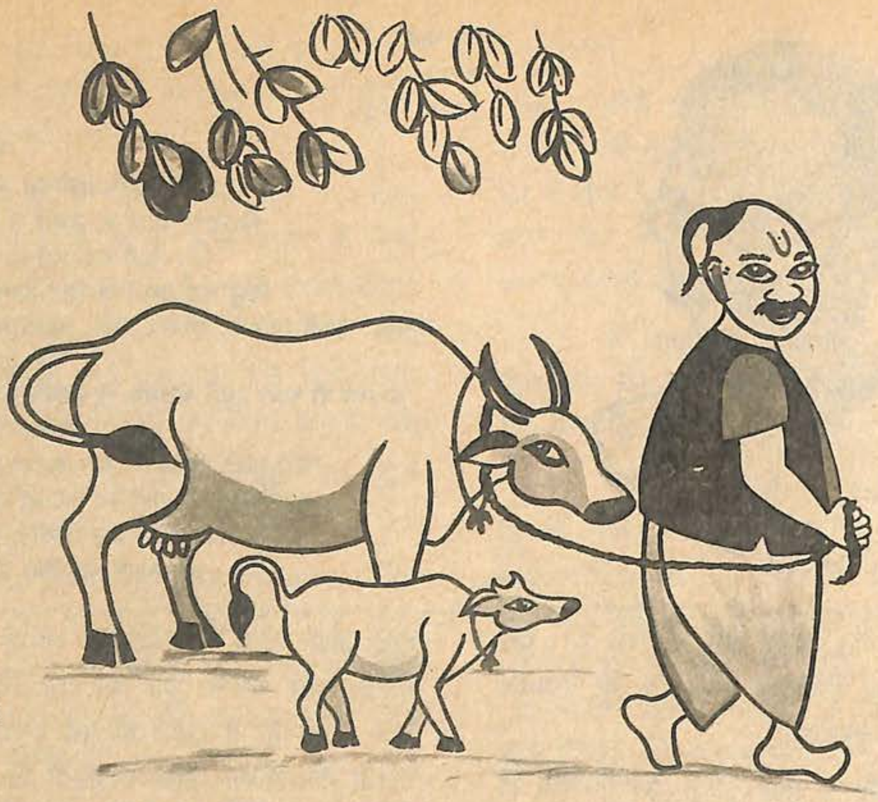

मेरे पैरों में नई ताक़त आ गई। उड़ने की-सी तेज़ चाल से चलकर मैं बरगद के पास पहुंचा। सचमुच मेरा सपना सच्चा साबित हुआ। झुंड में बैठी गायों में कई सुंदर-सुंदर गायें थीं। उनमें एक तो बहुत ही सुंदर थी। वह गाय दूसरी गायों की रानी की तरह उन सबके बीच बैठी थी। वह धीरे-धीरे जुगाली कर रही थी और जुगाली करते-करते बीच-बीच में ऊंघ रही थी। ऊंघते समय जब उसकी गरदन हिलती थी तो उसके गले में बंधी रूपहली घंटियां टन्-टन्-टन् बजने लगती थीं।

मैं सीधा ग्वाले के पास पहुंचा। मैंने ग्वाले से पूछा, "भैया! क्या इन सब गायों के बीच में बैठी यह गाय बिकाऊ है? मैं इसको ख़रीदना चाहता हूं।"

ग्वाला कुछ देर तक मुझको एकटक देखता रहा। फिर बोला "हां, भैया, बिकाऊ तो है। लेकिन यह गाय बड़ी नटखट है। इसके आंचल में दूध तो बहुत है, पर यह दुहने तभी देती है, जब हिल-मिल जाती है।"

मैंने कहा, "मैं इसको ले जाना चाहता हूं। तुम जितने रुपए मांगोगे, मैं दूंगा। मेरी कमर में रुपयों की यह थैली बंधी है।"

ग्वाला बोला, "पहले आप इसको ले जाइए। यह आपके घर रह जाए और आप सबके साथ घुलमिल जाए, तो आप इसके दाम भेज दीजिए। मुझको दामों की जल्दी नहीं है।"

ग्वाला गाय के पास पहुंचा। गाय के गले पर हाथ फेरते हुए बोला "लो, उठो, खड़ी हो जाओ मैया! जाओ, इन भाई के साथ जाओ। इनको लात मत मारना। इनको अपने सींगों पर मत उछालना।"

मैं गाय की तरफ बढ़ा। गाय के पास जाकर मैंने कहा "मैया! अब उठो। घर चलो। वहां सब तुम्हारी बाट देख रहे हैं।"

गाय खड़ी हो गई। बछड़ी भी खड़ी हुई। दोनों मेरे पीछे-पीछे चलने लगीं।

मेरे मन की खुशी का तो कोई पार ही नहीं रहा। मैं तो गाय के गले में बंधी घंटियों की आवाज़ सुनता जा रहा था, और मन-ही-मन सोच रहा था, "अपनी इस गाय के लिए मैं एक अच्छा सा छप्पर तैयार करूंगा। दूध दुहने के लिए एक बढ़िया बटलोई रखूंगा। गाय के गले में बांधने के लिए चांदी की एक सुंदर घंटी बनवाऊंगा।"

सांझ होते-होते हम अपने गांव में पहुंचे। रुम-झुम करती हुई गाय मेरे पीछे-पीछे चली आ रही थी। गांव के लोग तो गाय को देखकर ठिठक-से

गए। कहने लगे यह गाय है, या हथिनी है?

गाय के साथ मैं घर पहुंचा। गाय का रंभाना सुनकर बच्चों की मां हंसती-मुस्कुराती हुई घर से बाहर निकली और उन्होंने बाहर का दरवाज़ा खोला। उनके एक हाथ में कुंकुम् की डिबिया थी। दूसरे हाथ में फूलों की माला थी। उन्होंने गाय के भाल पर तिलक लगाया और गले में माला पहनाई। गाय पर चावल न्योछावर करके उन्होंने उसका स्वागत किया और हाल ही बनाई गई नई रस्सी लेकर गाय को एक खूंटे से बांध दिया।

बच्चों की मां ने गाय के लिए घास और पानी दोनों तैयार रखे थे। दूध दुहने के लिए पीतल की नई बटलोई ख़रीद ली थी। पड़ोसी के घर से वे एक नई नोई भी मांग लाई थीं।

सांझ पड़ते ही बच्चों की मां ने बटलोई हाथ में ली, और वे दूध दुहने पहुंची। जैसे ही उन्होंने गाय के आंचल पर पानी छिड़का, गाय उठकर दूसरी तरफ चली गई।

मैंने सोचा, 'भूल हुई। पहले गाय के सामने सानी रखनी चाहिए।' जैसे ही मैं सानी-भरा तसला गाय के सामने रखने पहुंचा, गाय ने अपने सींग उठाए। मैं चौंककर पीछे हट गया। बच्चों की मां के मुंह पर उदासी छा गई। मैं भी गहरे सोच में डूब गया। ग्वाले ने कहा था कि गाय के हिल-मिल जाने पर ही उसके दाम दे जाइए, ग्वाले की बात सच लगी। मैं अपनी धीमी मीठी आवाज़ में, "मैया", मैया", कह-कहकर गाय को मनाने लगा। थोड़ी देर के बाद गाय कुछ शांत हुई-सी लगी, इसलिए बच्चों की मां ने नोई की बात सोची, और जैसे ही वे नोई से गाय के पैर बांधने लगी, गाय ने लात मारी, और लात खाकर वे गिर पड़ीं। इधर गाय बेकाबू हो उठी। खूंटे वाली अपनी रस्सी तोड़कर वह सारे आंगन में उछलने-कूदने लगी। मैं हैरान हो उठा। सोचने लगा, 'यह इतनी सुंदर और दुधारू गाय, पर यह इसका कैसा रौद्र स्वरूप।' फिर सोचा 'चलूं, क्यों न मैं ही इसका दूध दुह लूं।' लेकिन मैं तो दुहना जानता नहीं था। फिर भी मैंने अपना मन तैयार किया और सोचा कि देखूं तो सही, यह मुझ पर नाराज़ होती है या नहीं?

"मैया, मैया!" कहता हुआ मैं गाय के पास पहुंचा। गाय खीझी हुई तो थी ही। वह सीधी मेरे पीछे दौड़ी और मुझको अपने माथे की टक्कर दी। अगर मैं थोड़ा हटा न होता, तो दीवार के और गाय के बीच पड़कर मेरे राम तो उसी समय रम चुके होते। मैं जान लेकर भागा और जाकर खटिया पर बैठ गया।

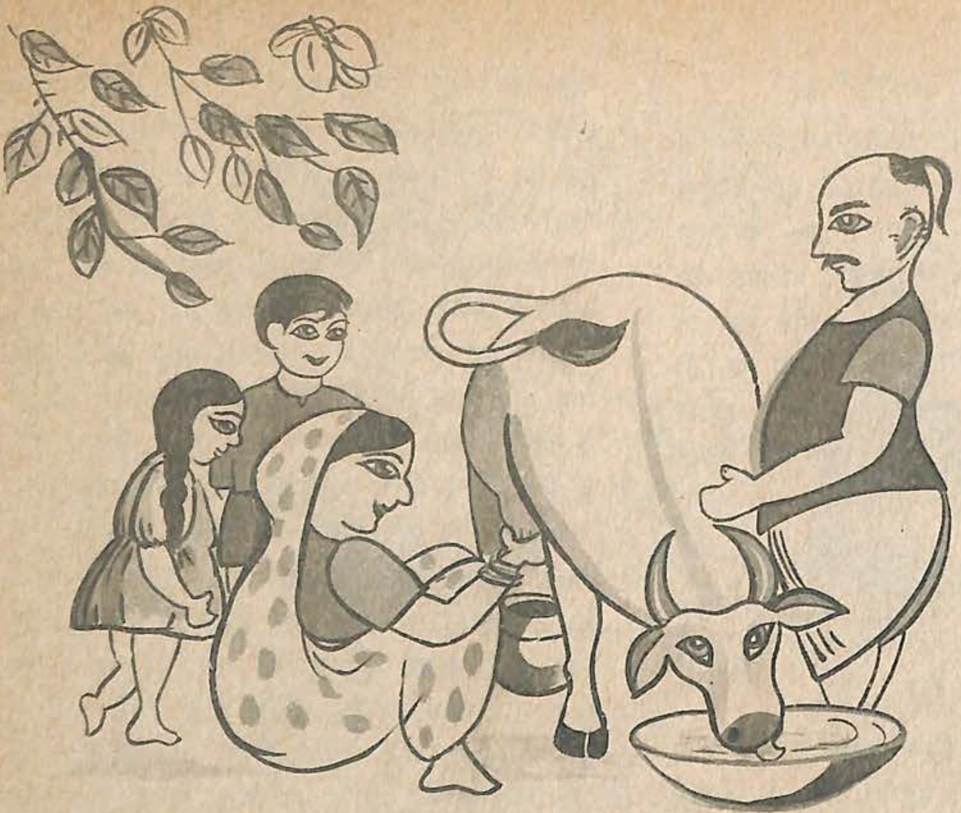

लगता है कि यह कोई ख़ानदानी गाय है। ख़ानदानी गाय के लिए नोई की ज़रूरत नहीं रहती।"

बच्चों की मां बटलोई लेकर दुहने बैठीं, और सर-सर की आवाज़ के साथ दूध की सफ़ेद धारें बटलोई में गिरने लगीं। देखते-देखते बटलोई कांठे तक भर गई, और ऊपर झाग ही झाग तैरने लगा। गाय न तो हिली और न डुली। जैसे-जैसे मैं उसको सहलाता गया, वह बराबर दूध छोड़ती चली गई।

बाद में हमने लपसी, मूंग और दूध-भात का भोजन किया। अपनी इस गाय के दूध की तारीफ़ मैं किन शब्दों में करूं? मुझको तो वह अमृत की तरह मीठा लगा। अपनी ज़िंदगी में ऐसा दूध मैंने इससे पहले कभी पिया नहीं था। बच्चों की मां को भी दूध बहुत अच्छा लगा। हमने गाय को लपसी खिलाई और थोड़ा दूध भी पिलाया।

अब बच्चों की मां के पैरों में ताक़त आ गई। उन्होंने बचे हुए दूध का दही जमा दिया। वे सोचने लगीं। "कब सवेरा हो, कब मैं दही बिलोऊं, और कब पड़ोसियों को छाछ दूं।"

भोजन के बाद मैंने गाय के सामने घास डाली। रात देर तक मैं गाय को सहलाता रहा, और उसको अपने मीठे-मीठे बोल सुनाता रहा। सोते समय मैंने मन ही मन सोचा, 'सचमुच, यह गाय तो मेरे घर की लक्ष्मी है। इसको मैं अपनी जान की तरह संभालूंगा।'

□ गिजु भाई

(गुजराती से अनुवाद काशीनाथ त्रिवेदी)
सभी चित्र : आशा शर्मा

गाय वहीं चक्कर लगाने और पैर पछाड़ने लगी।

बच्चों की मां का मुंह तो बिल्कुल ही उतर गया था। यह सोच कर कि कहीं यह सारा खेल पड़ोसियों ने देख लिया तो वे मज़ाक उड़ाएंगे, उन्होंने घर का दरवाज़ा बंद कर दिया था। हम दोनों एक-दूसरे का मुंह ताकते हुए गुपचुप बैठे रहे।

बच्चों की मां ने आज बड़ी उमंग के साथ लपसी और बड़े पकाए थे, और सोचा था कि रात गाय के दूध के साथ भात खाएंगे। लेकिन यहां तो बदले में गाय की लात मिली और फ़ज़ीहत हुई सो अलग।

मैं खटिया पर बैठकर गुपचुप सोचने लगा, 'भई, इस गाय में कोई ऐब तो नहीं है? हो सकता है मुझको इसकी आदतों का पता न हो। शायद सानी-पानी देते समय गाय को सहलाना होता है। हम तो इसको सहलाना भूल ही गए।'

मैं फिर उठा। धीमे से गाय के सामने सानी-भरा तसला रखा। फिर धीरे-धीरे मैं उसको सहलाने लगा। इस बीच गाय थोड़ी शांत हो चुकी थी। वह धीमे-धीमे सानी खाने लगी। मैंने बच्चों की मां से कहा, "अब बिना नोई बांधे तुम दूध दुह लो।

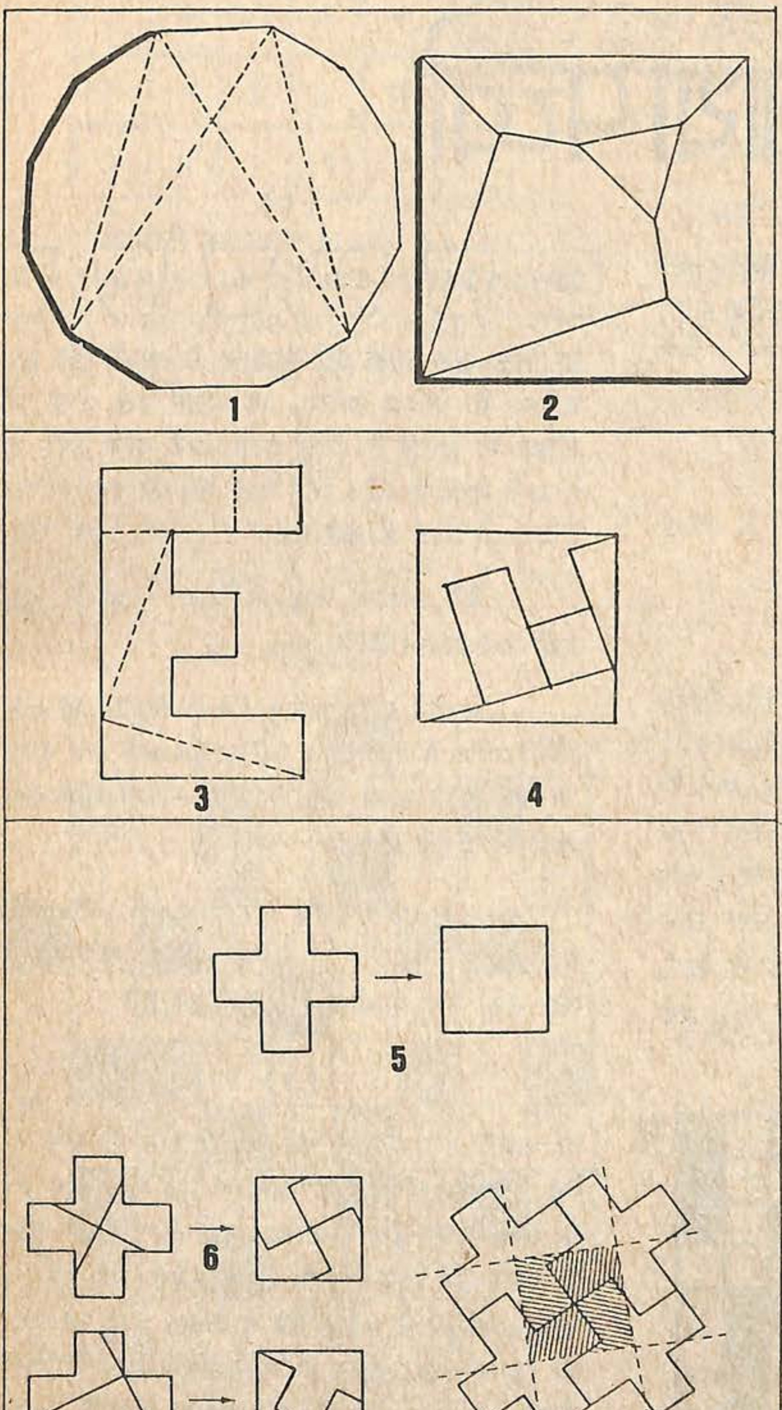

कांट-छांट की पहेली

यह पहेली है किसी आकृति को कुछ टुकड़ों में बांटकर, फिर उन टुकड़ों से नई आकृति बनाने की।

चित्र-1 में बारह समान भुजाओं वाली एक नियमित आकृति है। इसे छह टुकड़ों में बांटा गया है। चित्र-2 में दिखाई गई आकृति (वर्ग) इन छह टुकड़ों से ही बनी है। करके देखो, कैसे संभव हुआ यह?

इसी तरह चित्र-3 में बनी E नुमा आकृति को पांच टुकड़ों में काटकर, वर्ग बनाया गया है (चित्र-4)।

कांट-छांट की इन पहेलियों में धन चिन्ह (+) की पहेली अद्भुत है। चित्र-5 में बने धन चिन्ह में पांच समान वर्ग हैं। इन्हें काटकर, दुबारा जोड़कर बड़ा वर्ग बनाना है। चित्र-6 एवं 7 में इसके दो तरीक़े बताए हैं। पर यह तरीक़े आए कहां से?

चित्र-8 को ध्यान से देखो, इसमें ही तरीक़े मिलेंगे।

□ अरविंद गुप्ता

चित्र : अविनाश देशपांडे

माथापच्ची

(1)

जब 'आने वाला कल, 'बीता हुआ कल' बन जाएगा। तो 'आज' रविवार के उतने ही क़रीब होगा, जितना कि वह तब होता, जब 'बीता कल', 'आने वाला कल' होता। बताओ आज क्या है?

(2)

ऐसा कौन-सा अंक है, जिसमें 5 से भाग दें या 5 घटाएं, उत्तर एक समान ही आता है?

(3)

यह साधारण वर्ग-पहेली नहीं है, सफ़ेद-काले चौकोर खानों की भूल-भुलैया है। तुम्हें निचले बाएं कोने के काले **क** खाने से ऊपर की लाइन के दाएं कोने के **ख** काले खाने तक जाना है। लेकिन दो शर्तें हैं- एक तो यह कि तुम सिर्फ़ ऊपर-नीचे या आजू-बाजू चल सकते हो, तिरछे में नहीं। दूसरा यह कि काले खाने से सफ़ेद पर ही जा सकते हो या सफ़ेद से काले पर। काले से काले या सफ़ेद से सफ़ेद पर नहीं। अब ज़रा अपना रास्ता नापो!

ख

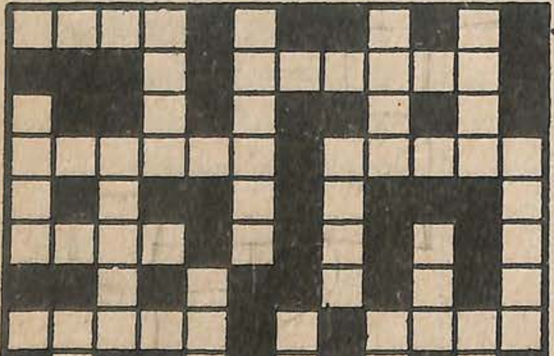

 क

(4)

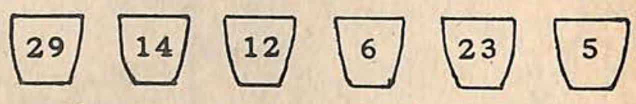

कासिम अंडे वाले की दुकान में अंडों की छह डलियां हैं। प्रत्येक डलिया पर उसमें रखे अंडों की संख्या भी लिखी है। चित्र देखो। अंडे दोनों तरह के हैं यानी देशी भी और फार्म वाले भी। पर एक डलिया में एक ही तरह के अंडे हैं।

मैंने कासिम भाई से पूछा, ''आपके पास देशी अंडे कितने हैं?''

उन्होंने सीधा जवाब देने के बजाए यह कहा कि, ''अगर मैं एक ख़ास डलिया के अंडे बेच दूं तो जो अंडे बचेंगे उनमें देशी अंडों की संख्या फ़ार्म वाले अंडों की दुगुनी होगी।''

अब मुझसे इतना गुणा-भाग तो होता नहीं। चलो, तुम्हीं बताओ की ख़ास डलिया कौन-सी है और देशी तथा फ़ार्म वाले अंडे कितने हैं?

(5)

दो बहनों ने नए साल पर पत्र लिखने के लिए दो पैड और लिफ़ाफ़े ख़रीदे। दोनों के पैड में बराबर पन्ने थे। लिफ़ाफ़े भी उन्होंने बराबर बांट लिए। बड़ी बहन ने अपने ढेर सारे दोस्तों को एक-एक पन्ने के पत्र लिखे। आख़िर में उसके पैड में केवल 50 पन्ने बचे, पर लिफ़ाफ़े सब ख़त्म हो गए। छोटी बहन ने अपने दोस्तों को 3-3 पन्ने के पत्र लिखे। अंत में उसके पैड के सारे पन्ने ख़त्म हो गए, लेकिन 5 लिफ़ाफ़े बच गए।

अब बताओ, हर पैड में कितने पन्ने थे और हरेक के पास कितने लिफ़ाफ़े थे?

(6)

4	8	4	2	7	6
7	3	10	8	4	1
3	4	1	2	3	4
2	8	5	3	6	7

यह एक कालोनी का नक़्शा है। इसमें 24 घर हैं। घरों में लिखे हुए अंक घर में रहने वाले लोगों की संख्या है। कालोनी के घरों को आठ हिस्सों में बांटना है, लेकिन इस तरह कि प्रत्येक हिस्से में रहने वालों की संख्या 14 हो।

(7)

तीन बच्चों का कुल वज़न 350 पाउंड है। सरोज का वज़न 105 पाउंड है। जो नंगे पैर है, उसका वज़न सबसे भारी बच्चे से 15 पाउंड कम है। रीता का वज़न जूते पहने बच्चे से ज़्यादा है। अनिल का वज़न चप्पल पहने हुए बच्चे से कम है।

नंगे पैर कौन है? और किसका वज़न कितना है?

बूझ मोरी पहेली

दो भाई एक रंग
गहरा उनका नाता
एक बिछुड़ जाए तो
दूसरा काम नहीं आता
□

□
बचपन में रही हरी
बुढ़ापे में हुई लाल
जिसने काटा चबाया
उसे कर दूंगी बेहाल

□ वर्षा पटवारे, टिमरनी

वर्ग पहेली-7

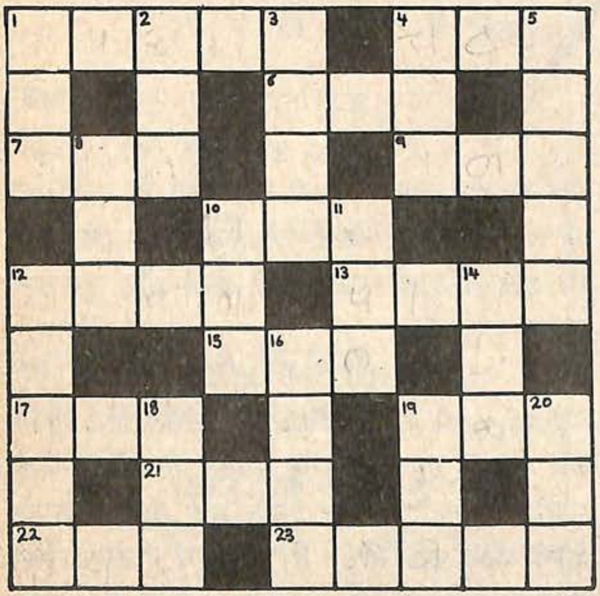

संकेत : बाएं से दाएं

4. नीचट में खाद्य पदार्थ (3)
6. ......के फ़कीर (3)
7. फसलों से संबंधित एक क्रांति (3)
9. कल हम में झगड़ा (3)
10. पहचान (3)
12. आका-नानी के मेलजोल में ना नुकुर (4)
13. मेहनत (4)
15. गत ला की क़ीमत (3)
17. मसख़री (3)
19. लान टेनिस का विश्व प्रसिद्ध खिलाड़ी (3)
21. आडंबर रहित (3)
22. वियतनाम का एक शहर (3)
23. सेंध लगाना (5)

संकेत : ऊपर से नीचे

1. बहुत गहरा (3)
2. राह तकने में सुख है (3)
3. पांव के नीचे घर (4)
4. एक प्राचीन चिकित्सक (3)
5. महकी नीम में जो हैं उनसे बचो (5)
8. बूंद-बूंद गिरने की क्रिया (3)
10. दूध में अगर बहुत पानी मिला हो तो क्या कहेंगे (3)
11. माल की बिक्री (3)
12. आराम देने वाला (5)
14. मेहनतकश (3)
16. गनमगी की गड़बड़ी में उदास (4)
18. एक साइकिल में कसने की मज़दूरी या निर्दयी (3)
19. भौंडा (3)
20. रात (3)

दुनिया पक्षियों की-31

तोता

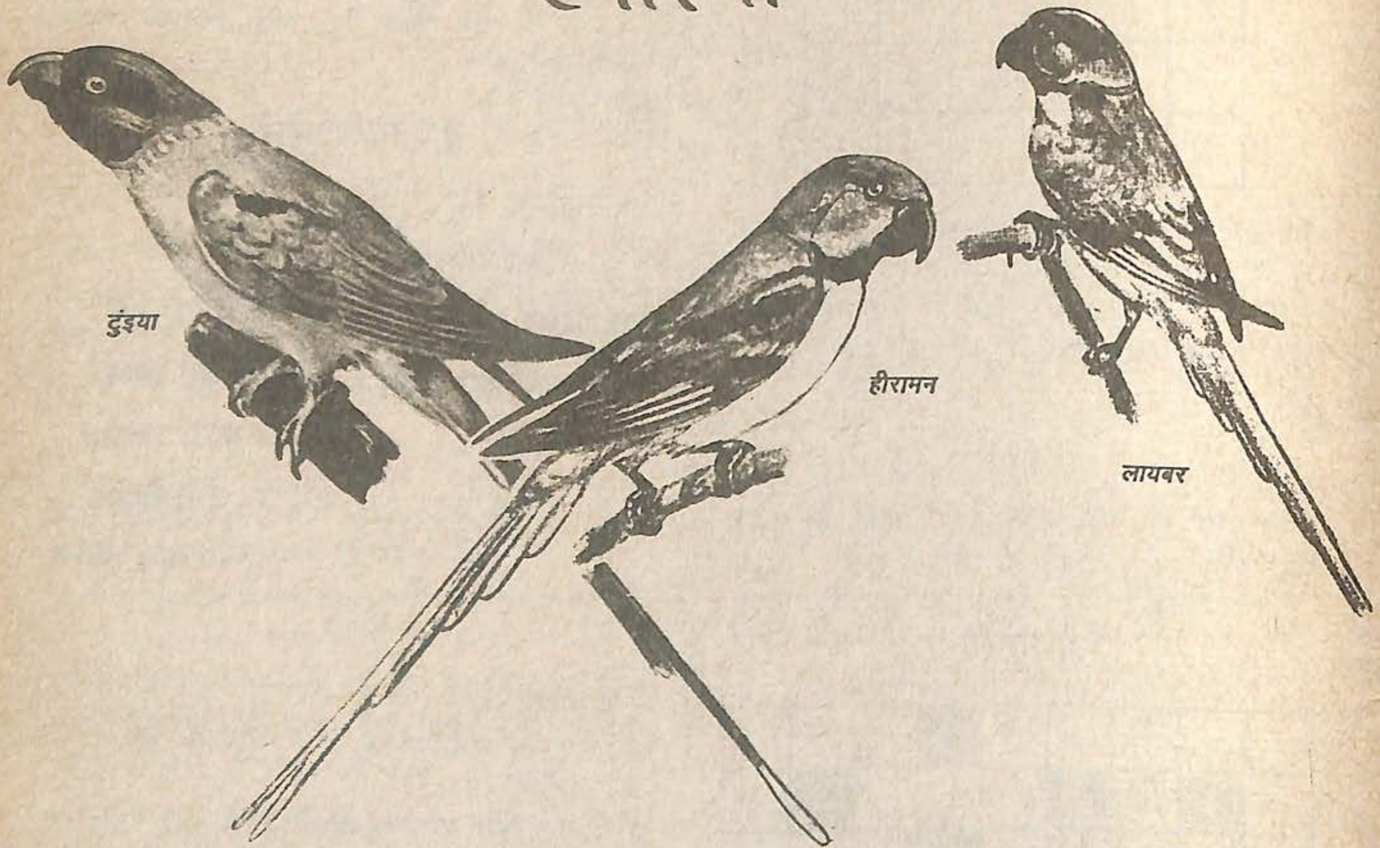

प्राचीनकाल से ही हमारे देश में तोता पालने का रिवाज़ रहा है, और इस कारण यह एक बहुत ही जाना-पहचाना पक्षी बन गया है। इसे मिट्ठू या सुग्गा भी कहते हैं। इसका अंग्रेज़ी नाम **पॅराकीट** है। भारत में तोते की लगभग दो दर्जन जातियां पाई जाती हैं। किंतु इनमें बहुतायत से पाई जाने वाली तीन ही जातियां हैं- छोटा या लायबर तोता, हीरामन या राई तोता और टुंइया तोता।

लायबर तोते का आकार मैना के बराबर होता है। इसका रंग हरा, चोंच लाल और पूंछ लंबी होती है। नर के गले में कंठी होती है जो नीचे से काली और ऊपर से गुलाबी होती है। मादा के गले में कंठी नहीं होती। ये केवल फल और दाने खाते हैं, और फूलों का रस पीते हैं! लायबर तोते बड़े-बड़े झुंडों में रहते हैं और ये झुंड खेतों और फलों के बगीचों को बहुत अधिक नुकसान पहुंचाते हैं। ये पहले एक बाली तोड़ते हैं और फिर उसमें से एक-दो दाने खाकर दूसरी तोड़ लेते हैं। फलों को भी तोते इसी तरह थोड़ा-थोड़ा कुतरकर छोड़ देते हैं। इस तरह ये पक्षी खाते कम और नुकसान ज़्यादा करते हैं।

लायबर तोते घनी बस्तियों में पेड़ों पर, बड़े-बड़े झुंडों में रात बिताते हैं। सवेरा होते ही ये शोर मचाते हुए खेतों और बगीचों की ओर निकल पड़ते हैं। शाम को जब इनके झुंड उड़कर वापस अपने बसेरे पर लौटते हैं, तो दृश्य देखने लायक होता है।

लायबर तोतों का प्रजनन काल फ़रवरी से अप्रैल तक होता है। ये घोंसला नहीं बनाते हैं। नर और मादा मिलकर पेड़ के तने में छेद बनाते हैं। इसी में मादा 4 से 6 सफ़ेद अंडे देती है। अंडे सेना, बच्चों का पालन-पोषण करना आदि काम नर और मादा मिलकर करते हैं। ये प्रायः पुराने मकानों की दीवारों, छतों आदि के छेदों में भी अंडे देते हैं।

अगर कहीं मैं तोता होता?

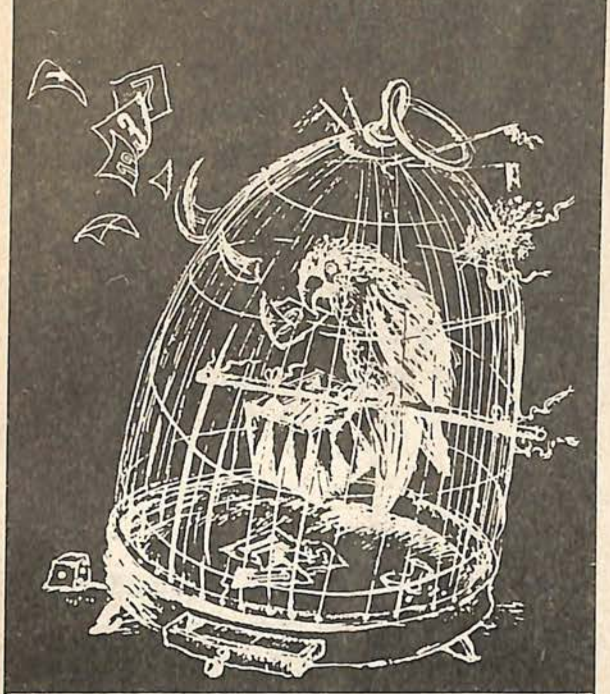

अगर कहीं मैं तोता होता?
तो न बंद पिंजड़े में होता!

पिंजड़ा छोड़ तुरत उड़ जाता,
पिंजड़ा तोड़ तुरत उड़ जाता,

रो रो अपने गाल न धोता!
अगर कहीं मैं तोता होता?

कभी नहीं मैं कुछ भी खाता,
भूखा रह-रहकर मर जाता,

रहकर दास न सुख से सोता!!
अगर कहीं मैं तोता होता?

जंगल में जब मंगल छाता,
खुश हो तभी गीत मैं गाता!

आज़ादी को कभी न खोता,
अगर कहीं मैं तोता होता?

□ सोहनलाल द्विवेदी

__हीरामन तोता,__ लायबर तोते से कुछ बड़ा यानी कबूतर के आकार का होता है। इसका रंगरूप भी लायबर के समान ही होता है। किंतु इनमें सबसे बड़ा अंतर यह है कि नर और मादा हीरामन के दोनों पंखों पर एक-एक लाल धब्बा होता है। नर हीरामन के गले में, नर लायबर के समान ही काली और गुलाबी कंठी होती है।

हीरामन तोते लायबर के समान बड़े-बड़े झुंडों में तो नहीं रहते, फिर भी खेतों और बगीचों में काफ़ी नुकसान पहुंचाते हैं। इसका प्रजनन काल दिसंबर से अप्रैल तक होता है। हीरामन मादा भी पेड़ के खोखले तने में अंडे देती है।

लायबर और हीरामन, दोनों ही जातियों के तोते कुछ हद तक मनुष्य की आवाज़ की नक़ल कर लेते हैं। कुछ शब्द रटकर दोहरा भी सकते हैं। किंतु अपनी इसी विशेषता के कारण इन्हें अपनी आज़ादी खोनी पड़ती है। बहेलिए इनके बच्चों को पकड़कर बाज़ार में बेचने के लिए लाते हैं। घरों में आमतौर पर लायबर और हीरामन तोते ही पाले जाते हैं।

तोते कई करतब करना भी आसानी से सीख लेते हैं, जैसे खिलौना तोप चलाना, कागज़ उठाना। इसी कारण बाज़ीगर, सरकस वाले और ज्योतिषी भी इन्हें पालते हैं।

बहुतायत से पाई जाने वाली तोते की तीसरी जाति है-__टुंइया तोता__। आकार में यह लायबर तोते के समान ही होता है। किंतु नर टुइंया का सिर लाल और चोंच पीली होती है। गले में काली कंठी होती है और पंखों पर लाल धब्बे होते हैं। मादा का सिर भूरा और चोंच पीली होती है किंतु उसके गले में कंठी और पंखों पर लाल धब्बे नहीं होते हैं। टुंइया उड़ते समय टुंई-टुंई की आवाज़ करते हैं इसी कारण इनका यह नाम पड़ा। इनका भोजन तथा अंडे देने और बच्चों का पालन-पोषण करने का तरीक़ा अन्य तोतों के समान ही होता है। टुंइया भी झुंड में रहते हैं।

□ **अरविंद गुप्ते**

(चित्र सौजन्य : बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी)

क्या पहली बारिश से फोड़े-फुंसी होते हैं?

जून, 1991, का क्यों-क्यों.... 9 का सवाल शायद तुम्हें याद हो। चलो एक बार दोहरा लेते हैं। सवाल था- पहली बारिश में भीगने पर या सिर पर चलनी रखने से फोड़े-फुंसियां हो जाते हैं। ऐसा क्यों कहा जाता है?

सवाल देखकर तुम्हें यह तो याद आ गया होगा कि तुमने क्या जवाब भेजा है। हमारे पास 22 पत्र आए हैं। सबने अपना-अपना दिमाग़ लड़ाया है।

पहली बारिश में भीगने पर फोड़े-फुंसी होने के बारे में कुछ इस तरह के उत्तर आए हैं-

1. पहली बारिश का पानी गंदा होता है।
2. वातावरण में प्रदूषित धुंआ, अम्ल आदि होते हैं जो पानी के साथ नीचे आते हैं।
3. वायुमंडल में रोगाणु आदि होते हैं जो पानी के साथ नीचे आते हैं।
4. हम तो कई बार पहली बारिश में भीगे हैं, हमें फोड़े-फुंसियां नहीं हुईं।
5. हमने तो यह सुना है कि पहली बारिश में भीगने पर फोड़े-फुंसियां ठीक हो जाते हैं।

अब असलियत क्या है इस पर चर्चा करते हैं। जहां तक पहली बारिश का पानी गंदा होने का सवाल है, तो वह तो कुछ हद तक सही है। पहली बारिश अपने साथ वायुमंडल में उपस्थित धूल आदि को ले आती है। पर धीरे-धीरे वातावरण साफ़ होता जाता है। और फिर जो पानी बरसता है उसे हम कुछ मायनों में आसुत जल भी कह सकते हैं। ख़ैर, हमारी त्वचा पर फोड़े-फुंसियां शरीर की किसी व्याधि (बीमारी) के कारण होते हैं। कोई भी बाहरी चीज़ या रोगाणु आदि त्वचा पर फोड़े-फुंसी नहीं कर सकते। इसलिए पहली बारिश के पानी से फोड़े-फुंसी होने की बात तो ग़लत ही है। हां, अगर पहले से त्वचा पर फोड़े-फुंसी या घाव हैं तो बारिश के पानी से वे और बढ़ सकते हैं। उनमें रोगाणु अपना अड्डा जमा सकते हैं। पर पानी के साथ आने वाले रोगाणु नीचे आने तक जीवित रह पाएं, इसकी संभावना न के बराबर है।

ध्यान रहे यह ज़रूरी नहीं है कि हर पुरानी प्रथा, परंपरा या रीतिरिवाज़ दकियानूसी ही हो, उसके पीछे कोई तार्किक आधार भी हो सकता है। आधार एक या एक से अधिक भी हो सकते हैं। पर यह भी आवश्यक नहीं है कि हर परंपरा या प्रथा के पीछे आधार होगा ही।

ऐसे क्षेत्रों में जहां वायुमंडल विभिन्न रसायनों के धुएं, गैस आदि से प्रदूषित हो वहां तो सांस लेना भी शरीर के लिए हानिकारक है। वहां निश्चित ही पहली बारिश शरीर पर फोड़े-फुंसी न सही, कुछ और तकलीफ़ पैदा कर सकती है। बात चली है तो सुनो, सारे के सारे उद्योग, तेल से चलने वाले वाहन और बिजलीघर लाखों टन नाइट्रोजन ऑक्साइड और सल्फर डाइऑक्साइड आसमान में छोड़ते हैं। ये नाइट्रिक और सल्फ्यूरिक एसिड में बदल जाते हैं और बारिश के पानी के साथ नीचे चले आते हैं। ऐसी बारिश को तेज़ाबी बारिश कहा जाता है। विदेशों में तो इस समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया है। भारत में भी बंबई, दिल्ली, नागपुर और पुणे में ऐसी बारिश होती देखी गई है।

पहली बारिश में भीगने पर फोड़े-फुंसियां ठीक हो जाने की बात भी कुछ हद तक सही है। गर्मियों में शरीर पर पसीने और कपड़े की रगड़ से घमोरियां हो जाती हैं। आमतौर पर पहली बारिश में नहाने से ये घमोरियां त्वचा से ग़ायब हो जाती हैं।

तो अब यह तो कह सकते हैं कि पहली बारिश में नहाने पर फोड़े-फुंसी नहीं होते हैं, हां मज़ा आता है। यह मज़ा कैसा होता है, यह तो पहली बारिश में नहाकर ही महसूस किया जा सकता है!

अब बात करें कि चलनी सिर पर रखने से फोड़े-फुंसियां होते हैं या नहीं। इसके उत्तर दो तरह के हैं-

1. गेहूं तथा अन्य अनाज छानने वाली चलनियां धातु की होती हैं। जिनमें छेद होते हैं। कई बार छेदों के आसपास धातु के नुकीले सिरे निकले रहते हैं, जिनसे सिर में खरोंच आ सकती है या घाव हो सकते हैं।
2. आटा आदि छानने वाली चलनियों में इल्लियां आदि हो सकती हैं, जो सिर के बालों में गिर सकती हैं।

हमें भी यही लगता है कि संभवतः ऐसे कारणों से ही चलनी सिर पर रखने से मना किया जाता है। **वरना चलनी सिर पर रखने से फोड़े-फुंसियां होने की बात तो निराधार ही है।**

क्यों..क्यों..14

इन दोनों सवालों के उत्तरों में एक और बात पर ध्यान गया और कुछ पत्रों में लिखा भी है कि सिर्फ़ डराने या भय दिखाने के लिए ही ऐसा कुछ मन गढ़ंत कह दिया जाता है, जबकि होता कुछ नहीं है। **क्यों..? सच बात क्यों नहीं बताई जाती? क्यों बेवजह का डर हमारे मन में बिठा दिया जाता है? क्या यह ठीक है?** लो बातों..बातों में यहां तो क्यों....क्यों..? का एक नया सवाल ही बन गया। तो फिर इसी को **क्यों.... क्यों....14 मान लो** और अपने मन की बात लिख भेजो। और हां, अपने बड़ों के मन की बात भी लिखना कि वे क्यों बिना बात डराते रहते हैं। **अपना लिखा हमें 15 जनवरी, 92 तक भेज सकते हो।**

जिन्होंने जवाब भेजे हैं, उन पाठकों के नाम हैं:-
महेशचंद्र रावत, पालड़ी, जयपुर। रामावतार सिंह, नांगल, सीकर। सीताराम जांगिड़, पालड़ी, जयपुर। मंजू देवी पारीक, भांखरी, जयपुर। रघुवीर प्रसाद यादव, बड़ियाल खुर्द, दौसा। प्रकाशचंद, नथड़ियास, भीलवाड़ा। **सभी राजस्थान।** राघव प्रसाद विद्यार्थी, परतापुर, पूर्वीचंपारण, **बिहार।** गीता देवी कुशवाहा, करकटी, शहडोल। महेश कुमार बसेड़िया, होशंगाबाद। मुकेश कुशवाहा, शहडोल। सत्येंद्रसिंह रघुवंशी, हरदा। धर्मेंद्र जयसवाल, देवास। चंपालाल कुशवाहा, हिरन-खेड़ा, होशंगाबाद। जयदीप पण्डया, देवास। मीनाक्षी वैष्णव, सलिहा, रायपुर। जगदीश प्रसाद पाठक, बोड़ला। चंद्रभूषण श्रीवास्तव, कट्ठीवाड़ा, झाबुआ। सुरेशचंद्र रावत, लहर्रा, मुरैना। प्रदीप कुमार गुप्ता, त्योथर, रीवा। प्रणोद बोकिल, सोडंवा, झाबुआ। कुबेर शरण द्विवेदी, छपड़ौर, शहडोल। मीनू मिश्रा, भोपाल। गायत्री सेंगर, सेमरिया, रीवा। सत्येंद्र कुमार मिश्र, शाहपुर, सागर। **सभी मध्यप्रदेश।**

माथापच्ची : अक्टूबर, 91 के उत्तर

1. पहले वह तीन लीटर वाले नाप को भरकर चार लीटर वाले नाप में डाल देगा। फिर तीन लीटर वाले नाप को भरेगा और चार लीटर वाले नाप में डालेगा। ऐसा करने से तीन लीटर वाले नाप में केवल दो लीटर दूध बचेगा।
2. चौथे, दसवें, पंद्रहवें, बीसवें, छब्बीसवें और तीसवें खिलाड़ी को पुरस्कार मिलेगा।
3.

5. बहुत सारे रास्ते हो सकते हैं।
6. थोड़ा गुणा-भाग करोगे तो पाओगे कि प्रदीप की उम्र 6 वर्ष, अब्दुल की $4\frac{1}{2}$ वर्ष और सरोज की 7 वर्ष है। प्रदीप को 264, अब्दुल को 198 और सरोज को 308 पेंसिलें मिलेंगी।
7. मधुमक्खी और फूलों पर लिखी संख्याओं में एक संबंध है। उसी से यह तय होगा कि कौन-सी मधुमक्खी किस फूल पर बैठेगी।

वर्ग पहेली 6 : हल

1 च	2 प	3 ल		4 श	ह		5 अ	
	6 नि	त	7 नि	त		8 ग	रि	9 मा
10 अ	हा		ज		11 अ	ज		ख
12 स	रि	13 ता		14 स		15 दं	16 श	न
17 ह	न	न		वा		18 त	ब	ला
यो		19 पु	रा		20 प		21 री	ल
22 ग	23 ह	रा		24 स	र	25 ग	म	
	ल		26 त	म		27 त	लै	या

कुछ प्रचलित चिकित्सा पद्धतियां

दुनिया भर में चिकित्सा की 30 से अधिक पद्धतियां प्रचलित हैं। इनमें से कुछ परंपरागत पद्धतियां हैं तो कुछ आधुनिक। कुछ विज्ञान सम्मत पद्धतियां हैं तो कुछ केवल अनुभव आधारित हैं। हां, यह ज़रूर है कि इन चिकित्सा पद्धतियों को इस्तेमाल करने वालों का इन पर विश्वास होता है।

हमारे देश में भी चिकित्सा की कई पद्धतियां प्रचलित हैं। इनमें झाड़-फूंक, आयुर्वेद, यूनानी, होम्योपैथी तथा एलोपैथी प्रमुख हैं।

हर पद्धति में चिकित्सक का रोग को समझने, मरीज़ को जांचने का अपना तरीक़ा है। उसी आधार पर वह मरीज़ का इलाज करता है। यहां हम इन पद्धतियों की मोटी-मोटी बातें समझने का प्रयास कर रहे हैं।

झाड़-फूंक

झाड़-फूंक या तंत्र चिकित्सा सामान्य तौर पर धर्म के साथ जुड़ी है। हर धर्म में चिकित्सा का अलग तरीक़ा सुझाया गया है। झाड़-फूंक करने वाले यह मानते हैं कि शरीर में किसी बुरी आत्मा के प्रवेश से ही शरीर बीमार पड़ जाता है। इलाज यही है कि इस आत्मा को शरीर से निकाला जाए। तांत्रिक इस आत्मा को निकालने के लिए पूजा-अनुष्ठान करता है। झाड़-फूंक करता है। ताबीज़, गंडा आदि के रूप में जंतर या तंत्र रोगी के शरीर पर बांध दिया जाता है।

ओझा या ऐसे झाड़-फूंक करने वाले ज़्यादातर दूर-दराज़ के ग्रामीण इलाकों में, जहां अन्य चिकित्सा पद्धतियां उपलब्ध नहीं हैं, आज भी मौजूद हैं।

इन तरीक़ों से रोगी को वास्तव में कितना फ़ायदा होता है यह कहना मुश्किल है, पर इतना तो तय है कि कुछ लोग मनोवैज्ञानिक रूप से अवश्य फ़ायदा महसूस करते हैं। पर वह कुछ समय के लिए ही होता है।

आयुर्वेद

आयुर्वेद को मानव सभ्यता की सबसे प्राचीन लिखित चिकित्सा पद्धति माना गया है। अनेक रोगों में यह भी माना जाता है कि आयुर्वेद चिकित्सा आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों से कहीं अधिक असरदार है। यह मान्यता भी रही है कि आयुर्वेद का ज्ञान मानवों को देवताओं से मिला है।

हिंदू दर्शन के अनुसार प्रत्येक वस्तु पांच पदार्थों से बनी है। ये हैं, मिट्टी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। जब हम कोई वस्तु भोजन के रूप खाते हैं तो शरीर उस पर क्रिया करके उसे तोड़ना शुरू करता है। इन क्रियाओं के फलस्वरूप शरीर में वात, क़फ तथा पित्त उत्पन्न होते हैं। ये तीनों ही शरीर की विभिन्न गतिविधियों को संचालित करने में मदद करते हैं। लेकिन जब इनमें से किसी एक की कमी या अधिकता हो जाती है तो शरीर बीमार पड़ जाता है। इसे त्रिदोष सिद्धांत कहा जाता है। इसी सिद्धांत के आधार पर रोगों की पहचान की जाती है।

आयुर्वेद की यह भी मान्यता है कि सिर्फ़ रोग का आक्रमण ही ज़रूरी नहीं होता बल्कि ऐसी परिस्थितियां भी ज़रूरी हैं जिनकी वजह से किसी रोग के कीटाणु शरीर पर हमला करने में सफल होते हैं। रोगों के कुछ लक्षण ख़ास तौर से उभर आते हैं और कुछ छिपे रहते हैं। यह भी रोग की पहचान करने में मदद करता है। शारीरिक विकृतियों का विश्लेषण भी किया जाता है। रोग किस स्तर तक फैल चुका है यह भी देखा जाता है। परिवार में माता-पिता, नाना-नानी तथा दादा-दादी को कौन सी बीमारियां रही थीं, ज़रूरत पड़ने पर यह भी पूछा जाता है। नाड़ी तथा मल-मूत्र की जांच भी की जाती है।

कफ़, पित्त तथा वात की गड़बड़ियों से हुए विकारों को नियमित ख़ुराक तथा दवाओं एवं परहेज़ से ठीक किया जाता है। आयुर्वेदिक दवाएं पेड़-पौधों व जीव-जंतुओं से भी बनाई जाती हैं। गोलियों, काढ़ा, शरबत, चूर्ण, चाश्नी, मुरब्बा, भस्म, दवायुक्त खाद्य तेल व घी का प्रयोग किया जाता है।

आयुर्वेद के अनुसार दवाएं शरीर पर पाचनतंत्र के माध्यम से असर डालती हैं। कौन-सी दवा किस रूप में तथा कहां असर करेगी यह देखकर ही इलाज किया

जाता है। इलाज के दौरान खानपान बहुत ही नियंत्रित तथा संयमित रखा जाता है। यूनानी चिकित्सा पद्धति भी लगभग इन्हीं सिद्धांतों पर चलती है।

होम्योपैथी

होम्योपैथी चिकित्सा के जनक जर्मनी निवासी डा. हैनीमैन मूल रूप से एलोपैथी पद्धति के चिकित्सक थे। एक बार जब उनके बच्चे की तबीयत ख़राब हो गई तो उन्होंने उसका इलाज शुरू किया। लेकिन इलाज बच्चे को रास नहीं आया। इस बात ने हैनीमैन को परेशान कर डाला। उन्होंने सोचा आख़िर दवा और इलाज में रास न आने जैसी क्या बात है। अगर रोगी को किसी पद्धति का इलाज रास नहीं आता तो इलाज का क्या मतलब हुआ।

हैनीमैन ने अपने ही ऊपर प्रयोग करके पाया कि कुछ दवाएं भले-चंगे आदमी को दी जाएं तो ऐसा असर दिखाती हैं, जैसे किसी रोग के लक्षण हों। करीब 50 क़िस्म की दवाईयों पर प्रयोग के बाद हैनीमैन ने निष्कर्ष निकाला कि एलोपैथी इलाज कई मामलों में अधकचरा है। सन् 1796 में उन्होंने एक लेख में अपने सिद्धांत दुनिया के सामने रखे। उन्होंने बताया कि 'हर एक शक्तिशाली औषधि मानव शरीर में एक नए क़िस्म की बीमारी के लक्षण पैदा करती है। जितनी ताक़तवर दवा होती है, यह लक्षण उतने ही शक्तिशाली होकर उभरते हैं।'

होम्योपैथी इलाज का आधार सूत्र है-ज़हर, ज़हर को मारता है। मतलब कोई भी दवा जिस बीमारी के लक्षण पैदा करती है वही उस बीमारी को ठीक भी करती है।

दवाएं बहुत ही सूक्ष्म मात्रा में दी जाती हैं। विभिन्न दवाओं के घोल स्प्रिट में बनाए जाते हैं और उन्हें अलग-अलग तरीक़ों से इस्तेमाल में लाया जाता है। आमतौर से दवा के लिए सबसे उपयुक्त माध्यम शक्कर से बनी छोटी-छोटी गोलियां होती हैं।

रोगी का पारिवारिक इतिहास, रोग के लक्षण, बुख़ार, त्वचा, जीभ और नाड़ी भी होम्योपैथी में महत्व रखते हैं। मगर ज़्यादा महत्व बीमारी के लक्षणों को ही दिया जाता है।

कुल मिलाकर हौम्योपैथ बीमारी के लक्षण, कारण, प्रभाव तथा शरीर में मौजूद संभावित विषैले पदार्थों के आधार पर इलाज करते हैं।

एलोपैथी

प्राचीन मिस्र और मेसोपोटामिया सभ्यता के दौरान आधुनिक चिकित्सा का उदय हुआ। ग्रीक दार्शनिक हिप्पोक्रेटस को आधुनिक चिकित्सा का पिता माना जाता है। उसी ने चिकित्सा को अंधविश्वास से छुटकारा दिलाकर विभिन्न रोगों के शारीरिक कारणों की खोज पर बल दिया।

हिप्पोक्रेटस रोगियों की जांच और पूछताछ के बाद बीमारी का नतीजा निकालता था। वह बीमार की नाड़ी, पेशाब की रंगत, पाख़ाने की दशा, थूक का रंग, छाती के भीतर होने वाली आवाज़ सुनकर अपनी राय बनाता था। हालांकि तब से अब तक विज्ञान की मदद से आधुनिक चिकित्सा पद्धति ने कई मंज़िलें तय की हैं, लेकिन आज भी चिकित्सक शरीर की प्रारंभिक जांच इसी तरह करते हैं। फ़र्क इतना ही है कि अब छाती, पेट, आंत, पीठ, पेशियों तथा दिल की विशेष गतिविधियों की हल्की से हल्की आवाज़ सुनने के लिए संवेदनशील यंत्रों का इस्तेमाल किया जाता है।

एलोपैथी पद्धति में रोगों का इलाज, लक्षण, विश्लेषण तथा तात्कालिक आवश्यकता को देखते हुए बीमारी के अनुसार क्रमबद्ध रूप में किया जाता है।

दवाओं को गोली, तरल पेय या इंजेक्शन के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। जरूरत पड़ने पर आपरेशन किया जाता है।

अंत में

मज़ेदार बात यह है कि जहां एक ओर एलोपैथी पद्धति का बोलबाला है वहीं आयुर्वेद, होम्योपैथी तथा यूनानी पद्धति में रोगी की प्रारंभिक जांच-पड़ताल के लिए एलोपैथी में अपनाए जाने वाले तरीक़ों का इस्तेमाल किया जाने लगा है। हां, रोग की पहचान हो जाने के बाद चिकित्सक दवाईयां अपनी ही पद्धति की देते हैं। यह भी होता है कि बहुत से एलोपैथी वाले डॉक्टर दवाईयां आयुर्वेदिक बताते हैं। ज़्यादातर लोग भी बीमारी से छुटकारा पाने के लिए ऐसी मिली-जुली पद्धति का ही प्रयोग करते हैं।

□□□

खिलौनों को तोड़ने में ही बच्चों को सबसे ज्यादा मज़ा आता है।

The best thing a child can do with a toy, is to break it.

खिलौनों का बस्ता

THE TOY BAG

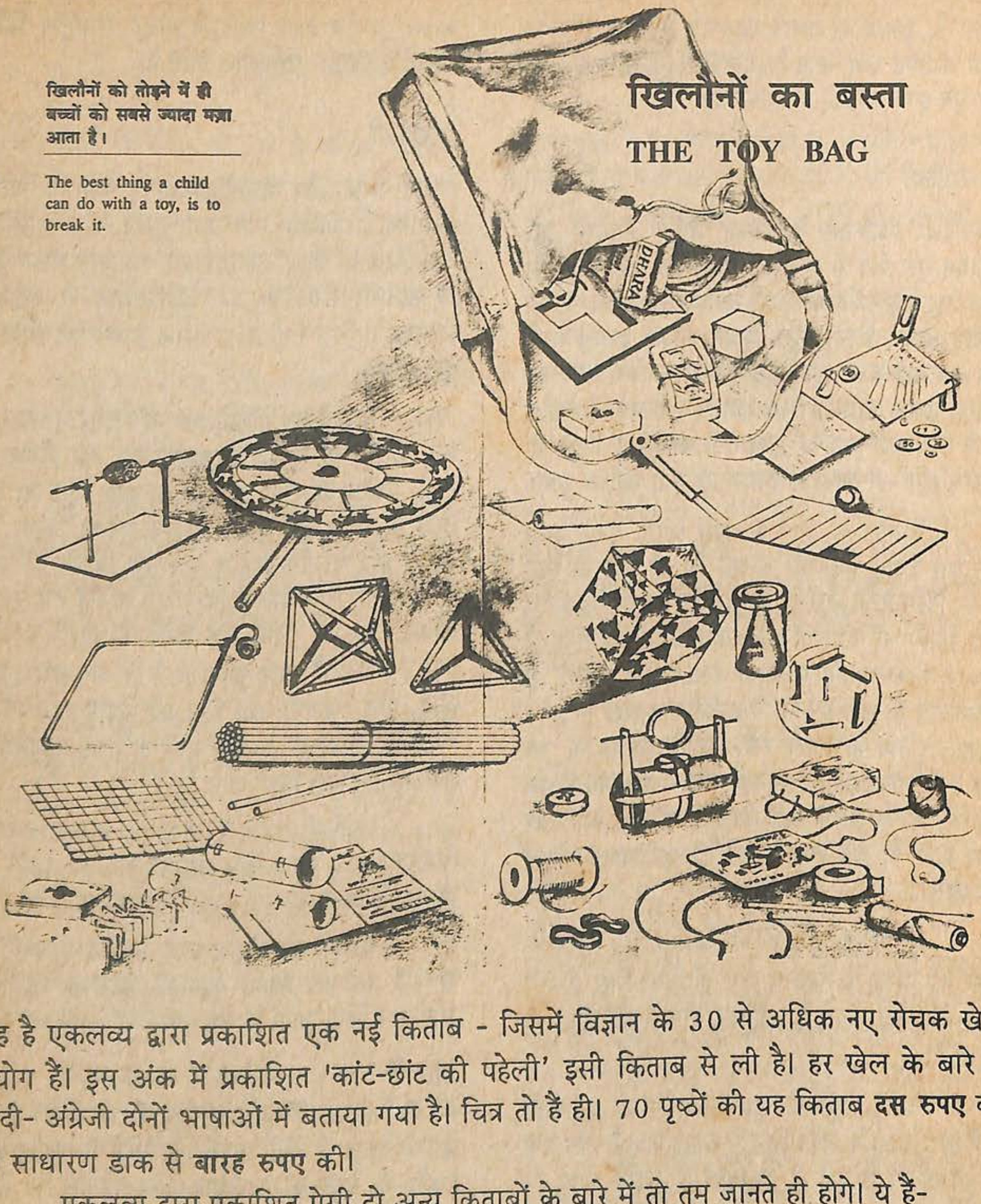

यह है एकलव्य द्वारा प्रकाशित एक नई किताब - जिसमें विज्ञान के 30 से अधिक नए रोचक खेल प्रयोग हैं। इस अंक में प्रकाशित 'कांट-छांट की पहेली' इसी किताब से ली है। हर खेल के बारे में हिंदी- अंग्रेजी दोनों भाषाओं में बताया गया है। चित्र तो हैं ही। 70 पृष्ठों की यह किताब **दस रुपए** की है। साधारण डाक से **बारह रुपए** की।

एकलव्य द्वारा प्रकाशित ऐसी दो अन्य किताबों के बारे में तो तुम जानते ही होगे। ये हैं-

1. **खेल खेल में** - 46 खेल प्रयोगों की सचित्र हिंदी पुस्तिका, मूल्य सात रुपए। साधारण डाक से नौ रुपए।
2. **कबाड़ से जुगाड़** - 30 खेल प्रयोगों की (हिंदी-अंग्रेजी भाषी) सचित्र पुस्तिका, मूल्य छह रुपए। साधारण डाक से आठ रुपए।

तीनों किताबों के लेखक हैं **अरविंद गुप्ता**। चित्र एवं साज-सज्जा **अविनाश देशपांडे** की है।

ये किताबें एकलव्य के होशंगाबाद, पिपरिया, हरदा, उज्जैन तथा देवास केंद्रों से भी प्राप्त कर सकते हो। किताबें बुलवाने के लिए राशि मनीआर्डर से एकलव्य के नाम पर भेजना।

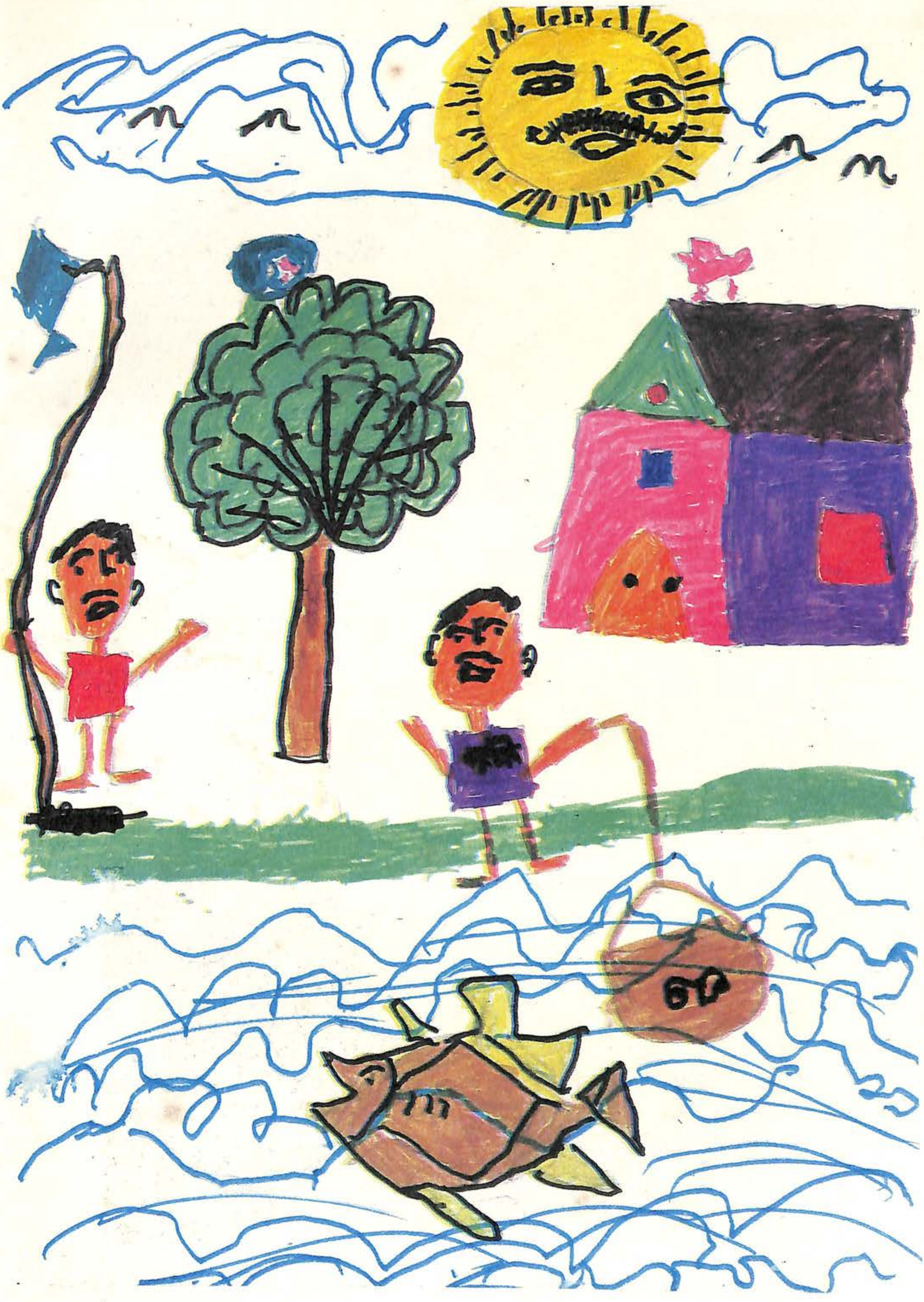

वरुण दुबे, छह वर्ष, जयपुर

पंजीयन क्रमांक 50309/85 के अंतर्गत भारत के समाचार पत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकृत।
डाक पंजीयन क्रमांक BPL/DN/MP/431/91

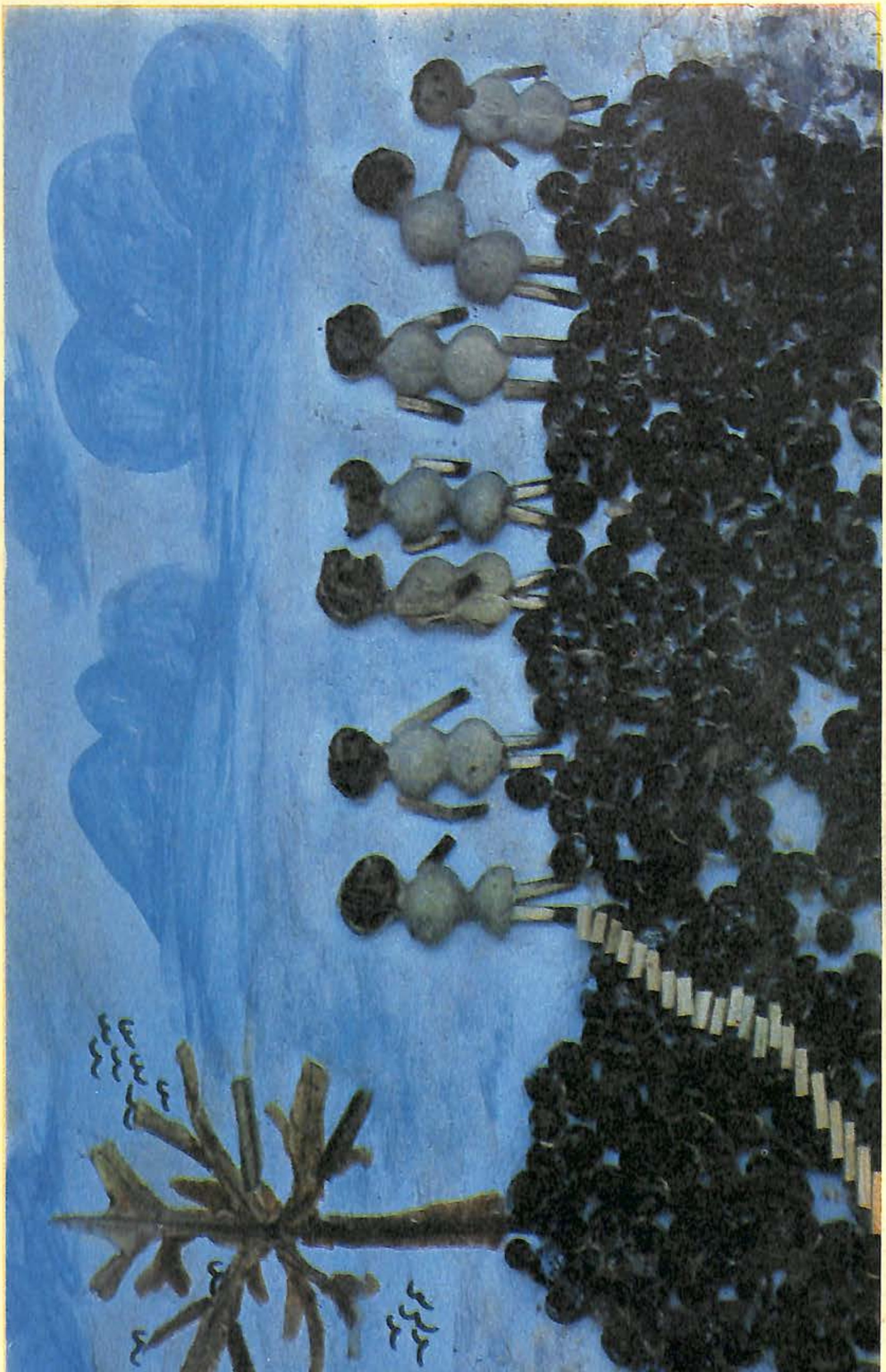

रेक्स डी रोजारियो की ओर से विनोद रायना द्वारा राजकमल ऑफसेट प्रिंटर्स, भोपाल से मुद्रित एवं एकलव्य, ई-1/208, अरेरा कालोनी, भोपाल-462 016 से प्रकाशित
संपादक : विनोद रायना